Municipal Library,
NAINI TAL.

Class No. 891.07

Book No. Sh89 B.

1047

भय्या अकिल बहादुर

लेखक

जी० पी० श्रीवास्तव

प्रकाशक

प्रकाशक—
विजय शुक्ल
नेशनल लिटरेचर कम्पनी
१०५, कॉटन स्ट्रीट,
कलकत्ता।

प्रथम बार
सन् १९४०
मूल्य ४॥)

मुद्रक—
सुधांशुरञ्जन सेन
ट्रूथ प्रेस
३, नन्दन रोड
कलकत्ता।

राम राम भाई

भय्यापाठक,

गर आप मिस्टर, महाशय, बाबू, मुंशी वग़ैरह हैं तो जनाब आपके लिये ख़ाली मेरा सलाम, बन्दगी, आदाब, तस्लीम, नमस्कार, प्रणामजो भी पसंद हो, हाज़िर है। और अगर आप मेरे ही समान अच्छे ख़ासे भय्या हैं तो लाइये हाथ। ख़ूब मिले। राम ! राम ! कहिये अक़िल तो ठीक है। सच पूछिये तो मिज़ाजसे बढ़कर सलामती इसीकी चाहिये। तभी आप मेरी बात समझ सकते हैं और मानेंगे भी। सुनिये। जिस तरह महादेवजी देवताओंकी भलाईके लिये सारा ज़हर ख़ुद पी गये उसी तरह मैंने भी आपलोगोंकी ख़ातिर भ्रमणकी मुसीबतें अपने सर लाद ली है। और आपको होशियार करनेके लिये इसका कच्चा चिट्ठा लिखना शुरू कर दिया है और उसीके साथ हर जगहकी पोल भी खोल रहा हूँ। ताकि किसीके बहकानेमें आकर आप इसके चक्करमें न पड़ें। और कहीं जानेका भूलकर भी नाम न लें॥

आपका शुभचिन्तक—

अक़िल गञ्ज]

भय्या अक़िल बहादुर

क्रम

विषय			पृष्ठ
१—कलकत्तेमें	...	...	१ — १६
२—लखनऊमें	...	...	१७ — ४६
३—मुश्किलमें	...	...	४६ — ६६
४—बम्बईमें	...	...	६७ —१११
५—हरद्वारमें	...	...	११५—१५६

कलकत्ता और लखनऊ

लेखककी अन्य रचनायें

१—लम्बी दाढ़ी
२—मीठी हँसी
३—कम्बख्ती की मार
४—नोक-झोंक
५—गंगा-जमनी
६—दुमदार आदमी
७—उलट-फेर
८—साहित्यका सपूत
९—भूल-चूक
१०—लोक-परलोक या फानूनीमल
११—तीसमार खां
१२—लतखोरी लाल
१३—दिलकी आग या दिल-जलेकी आह
१४—विलायती उल्लू
१५—लाल घुमक्कड़ (इसकी फिल्म बन चुकी है)
१६—स्वामी चौखटानन्द
१७—प्राणनाथ
१८—गुदगुदी आदि

प्रकाशित हो गया !

हिन्दीकी सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका

श्रीमती उषादेवी मित्रा

का

नया मौलिक सामाजिक उपन्यास

पथचारी

मूल्य १।)

मिलने का पता—नेशनल लिटरेचर कम्पनी

१०५, कार्टन स्ट्रीट, कलकत्ता।

भय्या अकिल बहादुर कलकत्ते में

लाहौल विलाकूवत ? न कहने काबिल न सुनने काबिल। क्यों ? यह न पूछिये। जिसके पैरोंमें सनीचर हो और खोपड़ीपर कम्बख्ती सवार हो वह ऐसी जगह जाए। वर्ना मैं भला कभी वहां क़दम-क़दमपर उल्लू बन सकता था ? हर्गिज़ नहीं।

मेरे ऐसा चालाक, होशियार और चलतापुर्ज़ा मेरे गांवमें क्या जवार तक दूसरा कोई ढूंढेसे भी नहीं मिल सकता। मेरी बुद्धिमानीका सबूत इससे बढ़कर और क्या होगा कि मैकू, ननकू, निरहू, घुरहू, दिन-रात मेरी दुमके पीछे लगे रहते हैं। जहां गांवमें कोई मुश्किल पड़ी तहां गांव के सबके सब दौड़ पड़े भय्या अकिल बहादुरके पास। लिखने-पढ़ने का काम तो बिना मेरे हाथ लगाए हो ही नहीं सकता। एक दफ़े घिराऊ पाँड़े ने मुझसे वसीयत लिखाई। मैंने भी उसे जी लगाकर ऐसा लिख दिया,

कि वकील तो वकील अदालत तक चक्करमें आगई। किसीसे भी उसका मानी लगाए न लग सका। सब अपना मुंह लेकर रह गए। एक बार मियां घसीटेकी बकरी कोदोरामके खेत चर गई। कोदोरामने चट गुप्तसे रपट लिखवाकर पुलिसमें भेज दी। रपट पढ़ते ही दारोग़ाजीके होश गुम हो गये। चालान करनेके जितने भी जुर्म उन्हें मालूम थे वह सब उस रपटके आगे गर्द हो गये। पुलिसकी फ़ौजी गारद लेकर घबड़ाये हुए मौके पर फट ही तो पड़े।

जिसकी बुद्धिमानीकी ज़रा सी बानगीपर जब ऐसे-ऐसे क़ानूनी जीव भानमतीका नाच नाचने लगते हैं तब उस अक़्लके अवतारको अगर कहीं जाकर बेवकूफ़ बनना पड़े तो यह बेवकूफ़ी मन्तक़के किसी क़ायदेसे भी उसके मत्थे नहीं मढ़ी जा सकती, जब मढ़ी जायेगी तब उस स्थान ही के मत्थे। और क्यों न मढ़ी जाय जहां न एक्का मिले न तांगा, न हाथ मलनेके लिये मिट्टी, न मुंह धोनेके लिये दातौन, न चलनेके लिये साफ़ सड़क। जहांका एक-एक मकान क्या है आदमीरूपी मधुमक्खियों का छत्ता तो वह स्थान भी कोई स्थान है? राम! राम! ऐसा ही स्थान भाई कलकत्ता है। जिसे हम ऐसे भलेमानुसोंको दूर ही से प्रणाम करना चाहिये। नहीं जो गति मेरी वहां हुई है वही आपकी होगी।

नज़दीक पहुंचते ही गाड़ी भरके सब मुसाफ़िर 'हबड़ा हबड़ा' कहकर बिलबिला उठे। मैंने झट खिड़कीसे बाहर गर्दन निकालकर देखा कि माजरा क्या है। ग़ज़ब होगया। सचमुच घबड़ानेकी बात थी। हर स्टेशन पर गाड़ी स्टेशनकी बग़लमें इधर या उधर लम्बी-लम्बी खड़ी होती आई। मगर यहां कम्बख़्त सामनेसे सीधे स्टेशनके पेटमें एक दम

दनदनाती हुई घुराती नज़र आई। मानो एञ्जिन उसे बम्बार्ड करने जा रहा है। ऐसी हालतमें बेचारे मुसाफिर घबड़ाते नहीं तो करते क्या? इस होनेवाली टक्करमें भला किसकी खोपड़ीकी सलामती थी? मगर सभी अपना-अपना सामान समटेने लगे। किरीको इस बौखलाहटमें ज़ञ्जीर खींचनेकी न सूझी। मगर मेरी अक्ल कब चूकनेवाली थी? झट गला फाड़कर चिल्ला उठा बल्कि यह कहता हुआ ज़ञ्जीरकी ओर लपका भी कि—"अरे ज़ञ्जीर खींचो ज़ञ्जीर खींचो नहीं अभी गाड़ी स्टेशनसे टकरा कर चूर-चूर हो जायगी।"

लोगोंने पहिले मुझे बिज्जूकी तरह घूर कर देखा। और फिर हंसाने लगे। ऐसी जोखिम घड़ीमें यह हंसना क्या मानी? मुझे बड़ा गुस्सा मालूम हुआ। खैर मेरा हाथ ज़ञ्जीरपर पहुंचते-पहुंचते गाड़ी खटसे रुक गई। लोगोंने इतमीनानकी सांस लेकर कहा—"बड़ी खैरियत हुई।"

मैंने कहा—"क्यों नहीं मेरे दमकी बदौलत।" इतनेमें एक माशा बाबू बोल उठे—"ओ बाबा तुम तो भारी बेकूफ़ मुआता है। हींयां रेलवेका 'टार्मिनस' (हद) है। हींयां तो गाड़ी एइ रकम खड़ा होना मांगता है..."

ईश्वर जाने वह क्या अल्लम गल्लम बकता रहा। बस इतना समझ में आया कि यहां नेकी भी करो तो उल्टे बेवकूफ़ कहलाओ। बलिहारी है ऐसे स्थान की!"

(२)

"हुबड़ा स्टेशन हुबड़ा स्टेशन उतरो उतरो" की हांक लगी। भई वाह! यह स्टेशनका नाम है या किसी जानवर का? इस नामके रखनेवालोंको क्या कहूं जिन्हें इससे बढ़कर बेतुका और कोई नाम सूझा ही नहीं।

सब उतर गए। मैं तो कलकत्ता जा रहा था मैं क्यों उतरता? बल्कि उतरनेको जब कहा गया मैं और भी अकड़ गया—"मैं कलकत्ते का मुसाफ़िर यहां क्यों उतरूं साहब?"

"कलकत्ता यही है।"

"अजी वाह! शहरका नाम कुछ और स्टेशनका नाम कुछ? ऐसा भी कहीं हो सकता है? चलिये चलिये किसी औरको बेवकूफ़ बनाइए।"

माशा-बाबू अभी प्लेटफ़ार्म ही पर मंडरा रहे थे। यह बातचीत सुनकर ज़रा नज़दीक सरक आए और मुस्कुराकर बोले—"ठीक तो बोलता है। उसको काहे बेवकूफ़ बनाता है? वह तो आप ही है। उसको बोलो कि वह आपना टिकट तो आंखी खोलके देखे।"

अररर! टिकटमें सचमुच कलकत्ताके बजाय हवड़ा लिखा था। यह मैंने अबतक देखनेका ख्याल भी नहीं किया था। शहर कलकत्ता और स्टेशन हवड़ा। भई वाह! अच्छा शहर है कि जो अपने नामका स्टेशन भी न नसीब हुआ। इसीको कहते हैं कि आंखके अन्धे और नाम नयनसुख।

स्टेशनपर दस-पांच उठाईगीरे न जाने कहांसे आकर चिमट गये। मैं भांप गया कि ये कुली ही होंगे। वर्ना इन्हें मुसाफ़िरोंके पीछे पड़नेकी क्या ज़रूरत थी? मैंने उनसे साफ़ कह दिया कि जिसे एक पैसेमें मेरा बोझ उठाना हो वह मुझसे बात करे। और अपना नाम बतलाये। तुमलोग वर्दी भी नहीं पहने हो। मैं तुम्हें एक पैसेसे ज्यादा देने का नहीं, समझे?

जिस तरह बन्दर मुंह फैलाकर काटनेको दौड़ता है वैसेही एकमागी

सबके मुंह खुल गये और पूरे एक मिनटके बाद उसमेंसे आवाज आई—"हमको कुली बोलता है ? बेकूफ़ कहींका। हम होटलवाला है।"

अब तमाशा देखिये। स्टेशन इतना बड़ा। और एक्का या तांगा एक भी नहीं। ज़नानी सवारी मेरे साथ तो कोई थी नहीं जो मैं पालकी-गाड़ी करता। मोटर सैकड़ों थीं तो मेरे बापका क्या ? जिनके लिये घरसे आई होंगी उनके लिये थीं। हमारे यहां भी भय्या धौंताल्सिंह के पास मोटर है जो जब कभी कोई अफ़सर आता है तो उसके लिये स्टेशन पर भेजी जाती है। इतनेमें एकने आकर कहा—"बाबू टैक्सी ?"*

मैं सरसे पैरतक उसको देखने लगा कि यह कम्बख्त कौन ज़बान बोल रहा है आखिर समझ गया कि हो न हो यह 'टैक्स' वसूल करनेके लिये अंगरेज़ीका कचूमड़ निकाल रहा है। मैंने बड़े ज़ोरसे 'उहुंक' कहकर उसे अपना सामान खोलकर दिखा दिया। बस हज़रत अपना मुंह लेकर चले गए।

मगर सवारीकी फ़िक्र दूर न हुई। शहर चाहे दो ही क़दम पर हो। मगर रेलसे उतरकर शहर हमेशा सवारीपर ही जाया जाता है। यह हर जगहका रिवाज है। इसलिये मरता क्या न करता! लपक कर वहां गया जहाँ कुछ बेजुती टमटमें सड़कपर उकड़ूं खड़ी थीं। और पास जाकर कहा कि—"अरे भाई इसे जोतोगे नहीं ?"

एकने दौड़कर पूछा—"क्या रिक्शा चाहिये। आइये आइये कहां जाइयेगा ?"

"कहीं जायेंगे। पहिले इसमें घोड़ा गड़हा खच्चर जो कुछ तुम्हें जोतना हो जोतो तो।"

* किराये की मोटर।

"आप बैठिये न साहब कहां जाइयेगा ?"

"फिर वही बात। शहर जायेंगे और कहां जायेंगे ?"

"शहर तो बूझा किन्तु ठिकाना तो बोलिये। रोड, स्ट्रीट, लेन कुछ बताइये तो।"

यह देखिये टमटमवाले भी मुझे बेवकूफ बनाने लगे। मैंने भी दिलमें कहा—"अच्छा बच्चा बतलाता हूं।" इसलिये किसी तरह टमटम में घुसकर बैठ गया। और बड़ी ऐंठी हुक्म दिया—

"पहिले शहर चलो तो वहीं ठिकाना बताऊँगा।"

"शहर नहीं तो यह क्या बन है ?"

"अच्छा अच्छा पहिले इसमें कुछ जोतोगे भी या बकवाद ही में दिन बितानेका इरादा है ?"

"जोतना किसको है ? बोलिये किधर चलें"—यह कह कर उसने उसे खुद ही खींचनेके लिये बम्ब उठा लिये। मैं चिल्ला उठा—

"अरे ! यह क्या ? क्या तुम इसे घसीटोगे ?"

"और नहीं तो क्या यह रिक्शा गाड़ी है।"

"धततेरे की ! मैं कोई मुर्दा हूं जो आदमीकी सवारी पर चलूं। राम ! राम ! ऐसी गाड़ीकी ऐसी तैसी !"

यह कहकर मैं दनसे कूद पड़ा। और सामान उठाकर एक तरफ़ चलता बना।

वह बेवकूफ़ सुस्तीको कहने लगा—"यह कैसा बांगड़ू है ?"

(३)

इधर टन-टन उधर भों-भों। रास्ता चलना आफ़त। क़दम-क़दमपर

मौत मुंह बाए खड़ी थी। जान सांसतमें पड़ गई। न जाने कितने धक्के खाए और कितनी बार मुंहके बल गिरा! राही भी सबके सब कुछ ऐसे भंग पीये हुए थे कि मैं पूछता-पूछता हैरान होगया कि—"हमारे लम्बरदारके सगे दामाद बरसातीनन्दन कहां रहते हैं जो हमारे गांवमें कलकतिया बाबू कहलाते हैं और यहां दफ्तरमें काम करते हैं उन्होंने ही मुझे लिखा था कि यहां आओ तो तुम्हें अच्छीसी नौकरी दिलवा दें इत्यादि इत्यादि।"—मगर किसी कम्बख्तने जवाब देना तो अलग रहा मेरी पूरी बात तक भी सुनना गवारा नहीं किया।

सौ-सौ मुसीबतोंसे हुगलीका पुल पार किया। यही ताज्जुब है कि कैसे इतनी दूर ज़िन्दा बचके चला आया। जिस सड़कपर तरह-तरह की मोटर ही नहीं बल्कि उनकी अम्माजान एक मंज़िला दो मंज़िला लारियां भी चलें और उनके पीछे बेइन्जनवाली रेलगाड़ियां भी दौड़ें जिनका पता ही नहीं मिलता कि मुंह किधर है और दुम किधर है, इधर आती हैं कि उधर जाती हैं, उस सड़कपर चलना बाप रे बाप आंख झपकते ही सीधे यमपुरी पहुंचना है इसलिये मैं सड़कके किनारे दूकानोंसे चिपका रेंगने लगा। उसपर भी जान न बची। एक यमदूत एक दूकानसे अपना सामान लिये-दिये मुझपर ही अररररधों होगया और उल्टे मुझी पर खौं खिया उठा—"तुम शालाबेटा ई की किया? हमरा शब माल टाल गिरा दिया?"

लेकिन मैंने निहायत ही भलमनसाहतसे कहा—"ओ ससुर-बच्चा ज़रा मेरा भी सामान उठवा देना। क्योंकि तुम्हारी उछल-कूदमें मेरी भी कमर झचक गई है।"

अभी थोड़ी दूर और आगे बढ़ा था कि एक बड़ी दूकानपर एक

विलायती साहब लाल-लाल चुकन्दरसा मुंह लिये बाहर कूदनेकी तय्यारी में खड़े थे। मैंने झट उन्हें झुककर सलाम किया। कुछ डरके मारे नहीं बल्कि इसलिये कि मेरे सलाम करनेसे वह ठिठुक जायें और मैं बेलाग निकल जाऊँ नहीं फिर न कहीं गड्मपटख़ होने लगे। मगर मेरे सलामपर हर तरफ़से यकायक हंसी गूंज उठी और उसीके साथ यह आवाज़ आई कि—"इस उल्लूको देखो। विलायती पोशाकके नमूना दिखानेवाले पुतलेको सलाम करता है।"

बड़ा ग़ुस्सा आया उस पुतलेके बनानेवालेपर। कम्बख़्तने जानबूझ कर ऐसा बनाया था कि हू-बहू आदमी जान पड़ता था। मैंने भी दिलमें कहा अच्छा रहो। एक दफ़ा चूक होगई। मगर अब थोड़े ही ऐसी ग़ल्ती हो सकती है।

संयोगसे सामने ही एक पुलिस कान्सटेबिल खड़ा हाथ मटका रहा था। रास्तेमें कई जगह ऐसा तमाशा देख चुका था। इस पर अब तक मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया था। मगर पुतलेका तजुर्बा होजाने पर अब जो उसपर ग़ौर किया तो मेरे कान खड़े हुए। क्योंकि न तो वह चलता था न फिरता था न बोलता था ख़ाली हाथ दनादन मटका रहा था वह भी ठीक बीच सड़क पर जहांसे यमपुरी बस एक ही क़दम पर थी। भला ऐसी जगह कौन बेवकूफ़ खड़ा होना पसन्द कर सकता था और फिर पुलिसके कान्सटेबिल जो छींकते ही नाक काटते हैं? बस विश्वास होगया कि हो न हो यह चाभी वाला पुतला है। और जो अभी मेरी भद हुई है उसको मिटानेके लिये ही ईश्वरने उसे यहां खड़ा कराया है। इसलिये मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ उसकी ओर बढ़ा ताकि मैं लोगों को

दिखला दूं कि मैं कोई ऐसा बेवकूफ़ नहीं हूं जिसे आदमी और पुतले की पहचान नहीं है। तावमें भरा जान पर खेलकर किसी न किसी तरह उसके पास पहुंच गया। और उसे घूरता हुआ सबको सुना कर बड़े ज़ोरसे कहा—

"वाहरे कारीगर! खूब बनाया है!"

मगर किस धातुका बना है यह जाननेके लिये ज्योंहीं उसकी नाक टटोली त्योंही उसके मटकते हुए हाथकी कमानी न जाने कैसे कस गई कि वह झटकता हुआ हाथ झटककर तड़ाकसे मेरे मुंहपर पड़ा। मैं चौंधिया गया। ऐसी हालतमें भला कौन भलामानुस घूमकर उसे देखता और धातुका इत्मीनान करना गवारा कर सकता था?

(४)

कलकतिया बाबूके ढूंढनेमें जो-जो मुसीबत उठानी पड़ी अगर उसका ब्योरा लिखने बैठूं तो इतनी मोटी पुस्तक तैयार हो जाय कि प्रकाशकोंको देखते ही जूड़ी आने लगे। कई दफे, बेइज्जनवाले रेलपर भी, जिसे वहांवाले ईश्वर जाने ट्राम कहते थे या धड़ाम, चढ़नेकी कोशिश की। मगर मैं कोई बन्दर तो था नहीं जो चलती हुई गाड़ीपर उचककर बैठ जाता। और न नगां लुच्चा था कि बे सरोसामानके होता। इसलिये कभी पटरीपर पैर बहक गया तो कभी गठरी दरवाजे पर अटक गई। दौड़ते-धूपते आखिर शाम हो चली। मगर कलकतिया बाबूका पता न चला। हमारे जवारगें अगर दस कोस पर भी पूछिये कि भय्या अखिल बहादुर कहां रहते हैं तो विश्वास मानिये कि वह खाली आपको रास्ता ही नहीं बतलावेगा बल्कि सीधे आपको लाकर हमारे दरवाजे पर खड़ा भी

कर देगा। और कलकत्तेका यह हाल कि कोई किसीकी बात तक नहीं सुनता। पता बताना तो अलग रहा। वाह रे शहर!

पैरोंने आगे चलनेसे अब एक दम जवाब दे दिया। भूख और प्यास ने तो एकदम परेशान कर ही रखा था। उधर छोटी-बड़ी दोनों शङ्काओं ने भी ऊधम मचाना शुरू कर दिया। न मैदान, न झाड़ी न झंखाड़ और न कोई जगह आदमियोंसे खाली। बड़ी मुसीबत हुई। राहियोंसे कुछ पूछ-ताछ करना बिल्कुल बेकार था। सभी एक ही लाठीके हांके हुए थे। अपनी धुनके आगे बातका सीधा जवाब देना जानते ही न थे। जब कुछ समझमें नहीं आया तो एक मिठाईकी दूकानमें घुस गया।

बहुतसे लोग मेज़ कुर्सी लगाए मिठाइयां उड़ा रहे थे। मैं जाते ही गठरी गेज़पर रखकर दम लेनेके लिये एक कुर्सीपर बैठ गया।

एक नौकरने आकर पूछा—"बाबू की चाही?"

मैं गड़बड़ाकर बोल उठा—"दिशा जंगल।"

सब मेरा मुंह देखने लगे। नौकर भी बौखला गया। मगर उसने सम्हलकर पूछा—"बाबू यह की रकम की मिठाई है।"

तब तक एक बेवकूफ मुझे चिढ़ानेके लिये ख़ामख़ाह बड़बड़ाने लगा—"अजी हज़रत यह हलवाईकी दूकान है कोई बम्पुलिस नहीं है।"

"हां बूझा बूझा।"—कहकर अब नौकर भी बोला—"दिशा जंगल भी मिलने सकता है। दू आना लगेगा। ऊपर तल्लामें होटल है हुआं जाइए हुआं मिलेगा। जो टिकना चाहेगा तो पांच टका रोज पड़ेगा। बूझा?"

सामान वहीं रख झट उसके साथ हो लिये। ख़ैर शंकाओंसे तो

छुट्टी मिली। मगर हाथ मलनेके लिये कहीं रत्ती भर भी मिट्टी न मिली। साबुनकी आधी बट्टी लगा डाली फिर भी हाथ मेरे लिये नापाक ही रहा। मुझे उससे खु.द अपना बदन तक छूआ नही जाता था। साबुन कालेको गोरा भले ही बनाए मगर नापाकी दूर करनेमें मिट्टीकी बराबरी कब कर सकता है जब कि वह खु.द ही नापाक है। अब तो दुअन्नी देना खल गया। सोचा जब एक रोज़ ठहरनेके लिये पांच टका है तब दो पैसे और मिलाकर वहीं टिक क्यों न जाऊं। मगर जब मालूम हुआ कि यहां टकेके मानी रुपये हैं तब तो मेरे होश उड़ गये। धरोरे की। ऐसा अन्धेर तो स्वप्नमें भी नही देखा था। यह शहर है या लूटे जाने का अड्डा? सर पर पांव रखकर वहांसे भागा।

हलवाईकी दूकानमें फिर जाना पड़ा। क्योंकि मेरा सामान वही रखा था। मिठाइयोंको देखकर राल टपक पड़ी। पेट खाली हो जानेसे अब भूख रोके न सकी। नौकर "की चाही की चाही" कहकर अलग जान खाये हुए था। मैंने भी झल्लाकर कह दिया।—"अच्छा दो पैसेका सफ़ेद आलू ले आओ।" लोग फिर मेरा मुंह देखने लगे। नौकर भी भौंचक्का होकर खड़ा रह गया। तब मैंने इशारा करके बताया अरे वह क्या गोल-गोल और सफ़ेद सफ़ेद रखा है।

इतनेमें एक मेरी बात समझ कर बोला—"रसोगुल्ला।"

मैंने झट उसकी ताईद कर दी। "हां हां वही गुल्ला या बुल्ला जो चाहे कहो।"

रसगुल्ला कहनेवालेकी दिलचस्पी अपनी ओर पाकर मैंने उससे कलकतिया बाबूका पता ठिकाना पूछा। उसने कहा—

"अरे बाबा ! जब उसने तुमको चिठ्ठी दिया था—"

"दिया कहां था ? भेजी थी ।"—मैंने जल्दी से सुधार दिया ।

"हां हां वही तो हम भी बोलता है । जब चिठ्ठी दिया था तब उसमें वह अपना मकान नम्बर और स्ट्रीट ज़रूर करके दिया होगा ।"

अररर ! बग़लमें लड़का और शहरमें ढिंढोरा । खत तो मेरे पास अब भी मौजूद था । मगर इस बारीकीका मुझे अब तक बिल्कुल ख्याल न था ।

इतनेमें नौकर रसगुल्ला लेकर आगया । और मुंहमें गपसे डालने के लिये उसे जैसे ही उठाया वैसे ही अपने हाथोंकी नापाकी याद आई । कलेजेपर सांप लोट गया ।

बहुत सोचसाच कर मैंने नौकरको बुलाया और उससे कहा कि— "इसे तुम खाजाओ और मेरे लिये दूसरा लाकर तुम्हीं अपने हाथसे खिला दो । क्योंकि इतवारके दिन मैं अपने हाथसे कोई चीज़ नहीं खाता । जो कुछ सामने रखा जाता है उसे पहले छूकर दान कर देता हूं । और उसके हाथसे जो कुछ वह खिलाता है बस वही खाता हूं ।"

वाह रे मैं ! इस मुश्किलमें भला ऐसी अक़िलकी बात सिवाय भय्या अक़िल बहादुरके और किसे सूझ सकती थी ? मगर उस नौकर ने सब गुड़ गोबर कर दिया । वह बेवकूफ़ मुझे रसगुल्ला खिलाते समय अपनी पांचो अंगुलिया मेरे मुंहमें खोंस बैठा । मुंहके भीतर रसगुल्ला और उंगलियोंमें भेद जानना खासकर जब भूखसे आंते कुलबला रहीं थीं कहां मुमकिन था । वह बाप बाप करके एकबारगी बड़े ज़ोरसे चिल्ला पड़ा । इस हुल्लड़में अब वहां ठहरना मुनासिब न था । मैं अपना सामान लेकर लम्बा हुआ ।

(५)

खतके सहारे किसी तरह कलकतिया बाबूके मकान पर पहुंच गया। फिर भी उनका पता न मिला। घन्टों बाहर खड़ा रहा और सैकड़ों आवाज़ें दीं। सब बेकार। उस पर अन्धेर यह कि जो आता था वही उसमें एक-दम घुसता चला जाता था। न रोक न टोक न पूछ न ताछ। मकान क्या भटियारेकी सराय होगया। जिससे कहो कि ज़रा कलकतिया बाबूको बाहर भेज देना वही कहे हम उसको नहीं जानता। यह अच्छी रही। घुसनेको तो उनके मकानमें अपने बाप ही का मकान समझकर घुस गये और उनको न जानें? आखिर एक से झांय-झांय होगई। जब उसे मैंने बहुत घेरा तो उसने उल्टा मुझीसे पूछा—"वह कौन तल्लामें रहता है।"

जब बात समझमें न आये तो उसका जवाब भला मैं क्या दे सकता था? खड़े-खड़े परेशान होगया। आखिर मैं भी जी कड़ा करके भीतर घुसा। क्या करता? जैसा देश वैसा भेस। मकानके भीतरका हाल न पूछिये। न आंगन न बरामदा। कबूतरके दर्बेकी तरह कमरों ही की भरमार, और हर कमरेमें पूरा एक खान्दान। मानों सारा मुहल्ला एक ही मकानमें बसा हुआ है। और तारीफ़ यह कि एक घरमें रहते हुए भी कोई एक दूसरे को नहीं जानता। बाज़ारका भाव जिससे चाहिये पूछ लीजिये। मगर कलकतिया बाबूके नाम पर हक्की बक्की बन्द। वाह री हमदर्दी और मिलनसारी!

नीचे सब कमरे झांक गया तब सीढ़ीपर चढ़ा। वहां भी यही कांई-वांई की। फिर सीढ़ीपर चढ़ा। अब मैंने कमरोंकी गैलरीमें

कलकतिया बाबू कलकतिया बाबू'—कह कर शोर मचाना शुरू कर दिया। आस-पासके रहने वाले पिनपिना उठे। और लड़नेको तैयार होगये। मगर खैरियत होगई कि वैसे ही दूरके एक कमरेसे आवाज़ आई—"अरे! कौन? अक़िल बहादुर।"

मैं बोल उठा—"कौन बरसातीनन्दन? कहां हो किधर हो? अरे जल्दी आओ भाई।"

सलाम बन्दगीके पहिले ही मैं पूछ बैठा—"कहीं तुम्हारे गहां मिट्टी है?"

"मिट्टी? मिट्टी क्या करोगे?"

"कुछ करूंगा। पहिले बताओ कि है कि नहीं। तब आगे कोई बातचीत करो।"

"कलकत्तेमें मिट्टी कहां? सोना चाहे पसेरियों ले लो।"

"तब तुम्हारे कलकत्तेकी ऐसी तैसी।"

थोड़ी देरमें कलकतिया बाबूने पूछा—"कहो कहां ठहरे हो?"

भई वाह! यह अच्छी आवभगत की! दिन भर ढूंढ़नेके बाद हज़रत मिले भी तो लगे अब बला टालनेकी फ़िक्र करने।

छोटा सा कमरा, उसीमें असबाब, बीबी, बच्चे और सोनेके लिये ज़मीनपर एक बड़ा सा गद्दा। पाखाना मुशतरका। रसोई घर एकदम मकानकी खोपड़ी पर। और किराया पैंतालिस रुपये माहवार, सुनते ही मूछा आगई।

बीबी छत पर खाना बनाने चली गई। मैं भी कलकतिया बाबूके साथ रसोईका दर्जा देखने ऊपर गया। जब वहांसे हम दोनों वापस आए

तो ख्याल आया कि ऊपर हाथ मलनेके लिये राख तो मिल ही सकती है। क्योंकि सभीके चूल्हे वहीं थे। इसलिये मैं बहाना करके कमरे से निकला और अकेला ही ऊपर गया। और राखसे हाथ मलकर किसी तरह अपनेको सन्तोष दिया। मगर जब लौटा और अपने ख्याल के मुताबिक ठीक उसी कमरेमें पहुंचा जहां कलकतिया बाबूको छोड़ गया था तब उनकी जगह एक स्त्री दिखाई पड़ी जिसने मुझे कमरे में घुसते देखते ही झट घूंघट काढ़ लिया। मैं चक्करमें पड़ा कि हज़रत इतनी जल्दी पुल्लिंगसे स्त्रीलिंग कैसे होगये। उस वक्त याद आया कि ओहो! इनकी शादी लम्बरदार काकाके घर होनेके नाते दिल्लगीकी गरज़से हमें बेवकूफ़ बनानेके लिये यह सवांग किया है। फिर क्या था? मैंने भी यह कहकर कि—"वाह यार अब भी तुम्हारे मेहरेपनकी आदत न गई।" —चट उनका घूंघट उलट दिया।

आफ़त होगई। वह कम्बख़्त सचमुच स्त्री ही निकली। सर पर पांव रखकर भागा। नहीं खोपड़ी साबित न बचती। अब ख्याल आया कि कलकतिया बाबूका कमरा अभी एक मंज़िल और नीचे है।

खाना तैयार होजाने पर कलकतिया बाबूने मुझे ऊपर चलकर भोजन करनेको लाख कहा। मगर मैं तो अब ऊपर जानेसे एकदम क़सम खाकर ही पेट भर चुका था। अब ऊपर जानेका कैसे नाम लेता? हलधरका व्रत अच्छी तरहसे पालन कर डाला।

गद्दे पर रातोंको सोना पड़ा। हरेकके बीचमें खाली तकियोंकी कतार थी। सोते वक्त मैंने कहा—"भाई एक दातौन मुझे अभीसे दे देना। क्योंकि मैं तड़के ही उठकर हाथ मुंह धोता हूं।"

वह बोले—"यहां दातौन कहां ? मंजन रख लीजिये।"

मंजन जाए भाड़में। मंजनसे दांत भले ही चमक उठे। मगर जीभ थोड़े ही साफ़ हो सकती है। लो सुबहका भी खाना गया।

आधी रातको लघुशंकाने दिक किया। उठना पड़ा। कमरा अंधकार गुप्प। यह बिजलीकी बत्तीकी खराबी थी। जो सोते वक्त घटाई नहीं जा सकती थी इसलिये बुझा दी गई थी।

किसी तरह टटोलकर दरवाज़ा खोला। मगर लौटा तो अन्धेरेमें यह जानना मुश्किल होगया कि मैं गद्दे पर किस खानेमें था। बत्तीकी चाभी किस दीवारमें थी यह भी मुझे मालूम न था। घन्टा भर खड़े-खड़े सोचा किया। तब हिसाब लगाया कि अपनी जगहसे कै क़दम चलकर दरवाज़े तक गया था। उतने ही क़दम गिन कर मैं गद्दे पर आया। और रामका नाम लेकर वहसे लेट गया। वैसे ही मेरी पीठके नीचे कलकतिया बाबूकी बीबी बड़े ज़ोरसे चिल्ला उठीं। इस चिल्लाहट का जवाब मेरे लिये सिवाय कलकत्तेके नामपर गालियां देते हुए उसी वक्त भागनेके और कुछ न था।

कलकतिया बाबूको क्या कहूं। उस पाजीने मेरा सामान भी नहीं भेजा। और उलटे अपने ससुरजीको क्या लिख मारा कि लम्बरदार साहब रातोदिन मेरी खोपड़ी तोड़नेकी ताकमें रहते हैं। यहां तक कि गांवमें मेरा निकलना तक मुसीबत है।

॥ कलकत्ते की सैर समाप्त ॥

भइया अकिल बहादुर लखनऊमें

(१)

अजब कशमकशमें जान है। न उगलते बनता है न निगलते। ईश्वर कभी किसी भलेमानुसको ऐसे झगड़ोंमें न डाले राम राम करके तो भय्या घोंघाराम, यानी हमारे लम्बरदार साहब जो मुझसे रूठे हुए थे, किसी तरह ढीले पड़े। क्यों न ढीले पड़ते, किसीका काम बिना भय्या अक्किल बहादुरके चला है कि उन्हींका चलता? आखिर जब गरज़ पड़ी तो मूछोंका ऐंठना भूल गये और लगे दुम हिलाने। यह वक्त मेरे लिये भी अकड़नेका न था। यह बड़ी बात थी कि बिना किसी ख़ुशामदके आपसे आप पिघल गए। मगर उनकी अक्लकी बलिहारी कि यहां जान बखेड़ेमें पड़ गई।

अक़िल बहादुर

उनके बहनोईको क्या कहूं कि वह एक दिन आकर उन्हें न जाने क्या सुझा गए कि वह, यानी हमारे घोंघाराम अर्थात् लम्बरदार साहब झट लखनऊ चलनेकी तैयारी कर बैठे। गांवसे बाहर जिसने क़दम न रक्खा हो उसके लिये लखनऊ जाना, भाई सीधे जहन्नुममें जाना है। ख़ैर लम्बरदार साहब इतनी अक़्लमन्दी कर गये कि इस गाढ़े वक़्त में मुझे साथ ले लिया नहीं तो न जाने क्या न हो जाता। मगर यह नहीं समझते। उल्टे मेरी ही जान लेनेको कमर कसे हुए हैं। ऐसा अन्धेर तो मैंने कहीं नहीं देखा।

जो आदमी विलायत तक हो आता है वह सबसे ज़्यादा अक़्लमन्द समझा जाता है। तभी तो वह कोई हाकिम या बलिस्टर बनाया जाता है। और कलकत्ता विलायतसे कुछ कम नहीं है। मैं अगर विलायत पास नहीं हूं तो कमसे कम कलकत्ता पास तो हूं ही। क्योंकि आप जानते हैं कि हाल ही में मैं कलकत्ता जा चुका हूं। ऐसी हालतमें मुझे बेवक़ूफ़ बताना ख़ुद अपनेको बेवक़ूफ़ साबित करना है। मगर लम्बरदार साहबको कौन समझावे?

हज़रत यह नहीं सोचते कि उनका मुझे अपने साथ ले जाना ही ख़ुद उनकी इस बातको एकदम ग़लत किये देता है। क्योंकि गांवमें मेरे बराबर अगर कोई दूसरा अक़्लमन्द कहलाता तो वह उसे छोड़ कर भला मुझे पूछने जाते? मगर अब तो गरज़ निकल गई, जो चाहें करें।

एक तो यही उन्होंने बड़ी बेवक़ूफ़ी की कि अपनी देह-दसा नहीं [illegible] और जाड़े-पाले में सफ़र की ठान ली। वह भी रातके वक़्त, जब [illegible] मामूली बोचा भी गदेले और रजाईसे लिपट लिपटाकर भोंपूसक बन।

है। उस पर मुसीबत यह कि छोटी लाइन वाली रेलका दरवाज़ा आदमियों के लिये बनाते हैं, कुछ भैंसासुरोंके लिये नहीं। इसलिये अगर लम्बरदार साहब रेलपर चढ़ते समय उसके दरवाज़े ही में अटक कर रह गये तो मेरा क्या कसूर।

देहाती स्टेशनों पर रेल दो-चार मिनटसे अधिक ठहरना नहीं जानती और टिकट बाबू इतने चालाक होते हैं कि जब तक गाड़ी खोपड़ी पर नहीं सवार हो जाती तब तक टिकट देनेके लिये खिड़की तक नहीं खोलते। महज़ इसलिये कि मुसाफ़िरोंसे टिकटके मुंह माँगे दाम लें। बेचारोंको भाव-ताव करनेका ज़रा भी मौक़ा न मिले। मगर गाड़ी चाहे छूट जाती किन्तु मुझे अपने लम्बरदार साहबको छुटवाना मंज़ूर नहीं था। वरना भय्या अक़िलबहादुरको साथ ले चलनेमें उन्हें क्या फ़ायदा होता? मैंने समझा दिया कि दो टिकट एक साथ लेनेमें दाममें बहुत कुछ रियायत हो जाती है। यह कोई झूठ बात न थी। क्योंकि जब मैं कलकत्ता गया था, बिल्कुल अकेला था। उस वक्त आने-जानेका क़ानून भिड़ा कर मैंने एकाईके मसलेको दुगना कर दिया था और इस तरह तीन रुपयेकी रियायत करा ली थी। मगर इस दफ़े ईश्वरकी कृपासे हम लोग आप ही दो थे। नाक घुमाकर पकड़नेकी ज़रूरत नहीं थी। अब अगर लम्बरदार साहब अपनी बेवक़ूफ़ीसे टिकट बाबूको नाराज़ कर बैठे और टिकटके बदले गालियां पाई तो इसका ज़िम्मेदार मैं कैसे हो सकता हूँ?

आखिर उनसे दाम लेकर टिकट मुझीको लाना पड़ा, क्योंकि इतनी झुड़की खानेके बाद फिर उनकी हिम्मत खिड़कीके पास जानेकी न पड़ी। मगर उन्होंने टिकट बाबूको आगेसे बाहर कर ही रक्खा था। बस, अब

भला दाम क्या कम करता इसलिये उसीके मुंह मांगे दाम देकर चुपकेसे किसी तरह टिकट ले लिए।

फाटकरेसे बाहर निकलते ही एञ्जनने सीटी दे दी और लम्बरदार साहब गायब। यह और परेशानी हुई। इनका साथ करनेसे तो किसी और जानवरका साथ करना अच्छा था। उसे जिधर हांकते उधर चलता तो। दौड़कर गाड़ीकी ओर लपका तो देखता क्या हूँ कि आप सामनेवाली गाड़ीके दरवाजे पर खड़े भीतर किसीसे लड़ रहे हैं। मैं समझ गया कि हज़रत मारे मुटाईके दरवाजेमें अँड़सकर रह गये हैं। वरना लड़ना ही था तो भीतर जाकर न लड़ते? छोटी लाइनका छोटा दरवाज़ा और इधर भैंसासुरी लोथ, उसपर रूईका गद्दैला और बालिश्त भर मोटी रज़ाई, भला इतनी गुंजाइश उस दरवाजे में कहां थी। ऐसे विलक्षण ढाँचेको अँटकेलकर भीतर करना भी मेरे हाथोंके मान का न था। बड़ी जोखिम की घड़ी थी, क्योंकि वह अगर ऐसे ही अटके हुए ज़रा देर और रहते तो गाड़ी चलते ही वह बाहर गिरकर पहियोंके नीचे ज़रूर चले जाते बड़ी खैरियत हो गई कि वक्तपर मेरी अक़्ल काम कर गई। मैंने उनके पीछे से कसके दो फुटबाली ठोकर धड़ाधड़ जमा दी जिससे उनके पेटकी हवा चिल्लानेमें यकायक इतनी निकल गई कि वह अपने लड़नेवालेको लिए-दिये गाड़ीके फ़र्श पर अररर भड़ामसे लम्बे-लम्बे औंधे पड़ गये। चलिये बाहर गिरनेका डर तो जाता रहा। मगर इस नेकीको वह क्या समझें?

(२)

अबकी मैं दूसरी गाड़ीमें बैठ गया तो मेरी कोई ग़लती न थी। क्योंकि

उस गाड़ीमें चढ़ना लम्बरदार साहबकी पीठ पर लात रखकर भीतर जाना था। और इससे मेरी भलमनसाहतमें ज़रूर कलंक लगता उस पर गाड़ी भी कमबख्त् चल पड़ी थी। जबतक मैं सोच रहा था कि क्या करूं क्या न करूं तब तक दूसरी गाड़ी सामने आगई। अब सिवाय उस पर चढ़ने के मेरे पास और कोई चारा न था। न चढ़ता तो भी खराबी थी, खास कर लम्बरदार साहबके लिये, क्योंकि टिकट मेरे ही पास थे। मैंने उनका इतना ख्याल किया कि चलती गाड़ीमें अपनी जान पर खेल गया और उनकी भलमनसाहत देखिये कि जब मैं निहायत शान से बैठा हुआ अपने डिब्बेमें लच्छेदार बातें उड़ा रहा था और वहाँ सभी मुझे बड़ा आदमी समझकर मेरी बातें बड़ी इज्ज़तसे सुन रहे थे उसी वक्त् एक स्टेशनपर हज़रत गड़बड़ाकर अपने डिब्बेसे उतरे और गाड़ीके इस सिरेसे उस सिरे तक लगे कफ़न फाड़कर "अकिल बहदुरा, अकिल बहदुरा" की हाँक लगाने।

अब इस बात पर भैया अखिल बहादुर का बोलना कहाँ तक हो सकता था, आप ही लोग समझिये, तब वहां वाले मुझे अपने दिलमें क्या कहते? मारी इज्ज़त खाकमें मिल जाती कि नहीं इसलिये वह इधर-उधर दौड़कर चिल्लाते रहे मगर मेरे कान पर जूं न रेंगी। गाड़ी चली तो इतमीनानकी सांस ली। मगर हाय हाय! वैसे ही दरवाजा भड़से खुला और लम्बरदार साहब बिना रज़ाईके बौखलाये हुये उसीमें घुस आये।

मेरे काटो तो खून नहीं। मैं ईश्वरसे दुआ माँगने लगा कि वह अन्धे हो जांय और मुझे न पहिचानें। मगर ईश्वरने मेरी आधी ही दुआ क़बूल की। क्योंकि एक पञ्जाबी दाढ़ी मुँह खोले इस बेंचपर खर्राटे भर रही थी जहाँ गाड़ी की रोशनी नहीं पहुंचती थी। लम्बरदार साहब सम्भल...

ऐसे अन्धे हुये कि उधर देखा भी नहीं और अपने बापकी जगह समझकर धमसे उसी खुले मुंहपर बैठ गये।

नीचे दाढ़ी छटपटाकर चिल्लाई और ऊपर लम्बरदार साहबकी खोपड़ी चिंघार मार उठी। मैं तो समझा था कि दाढ़ी ससुरी एकदम चिपटी हो गई होगी। मगर उसमें तो वह तेज़ी आ गई कि कुछ न पूछिये। पलक भरते ही फहराने लगी। जी हाँ, ठीक लम्बरदार साहबकी तोंदपर। उधर फिर होने लगी कुटम्बस। एक पंजाबी हिन्दी भूकता था और दूसरा देहाती। अजब गड़बड़झाला मचा। सिवाय गालियोंके और कुछ ठीक समझमें नहीं आता था। हां बीच-बीचमें लम्बदार साहब बिगड़कर इतना ज़रूर कह रहे थे कि "जहां हमारी रजाई धरी रही वहां तू का हुआ अस मुंह फैलागे बैठा रह्यो? कूकुर अस हमारि जाँघ फारि खायो और उल्टे सरऊ टर्रात हो"।

दाढ़ी भी फड़क-फड़ककर पूछ रही थी—"तेरी रजाईकी दुममें नेम्बा! बता मेरे दांत क्या किने। नहीं सीधे तेरेको जहाणुम भेज दूँगी।" सचमुच अब जो दाढ़ी पर नज़र गई तो वहां भारी भंखारके बीच खाली एक अँधेरी सी खोह दिखाई पड़ी, दांतोंका कहीं पता न था। नक़ली थी या असली इसका कौन पता लगाता? यहां तो बैठे-बैठे नींद आगई बस मुंह ढक लिया और नाक बजने लगी। इस मुस्तैदीके साथ कि दांत के फेरमें लम्बरदार साहब मुझपर दो-दो बार ढकेले जाकर उलट-पुलट भी किये गये मगर मेरी नाकके बजनेमें ज़रा भी रुकावट न पड़ी। आखिर दांत लम्बरदारकी धोतीमें ही कहींपर उलझा हुआ मिला। मगर कब? जब इस ढकेल ढुकेलमें मेरे बदनकी काफ़ी कुन्दी होकर किसी चौथलावन्द के साथ करनेकी सल्तों अच्छी तरह मालूम हो चुकी, तब।

यद्यपि मैं सो रहा था, आँखे बन्द थी, नाक बोल रही थी, और मुंह ढका हुआ था, फिर भी ज्ञानदृष्टिके प्रतापसे क्या बात मुझसे छिपी नहीं रही अब भी लम्बरदार साहब चुपके ही रहते तो बड़ी बात थी मगर उनकी बेवकूफ़ी उन्हें ऐसा कब करने दे सकती थी ? जब दाढ़ी दाँत पाकर उसे अपने मुंहमें लगानेमें बझी हुई थी तब हज़रतने चटसे उराकी रज़ाई खींच ली और ओढ़कर कोनेमें बैठ गये। लीजिये अब रजाईके लिये दूसरा कांड शुरू होगया। इस मामलेमें डब्बेके मुसाफ़िरोंने भी दाढ़ी ही का साथ दिया। जब लम्बरदार साहबके बदन पर से रज़ाई छिन गई और अंधेरेमें उन्होंने खिड़की तरफ़ घूमकर जब देखा और टटोला तब उन्हें मालूम हुआ कि यह उनकी नहीं है। अब तो सारी अकड़ भूल गई, घबराकर बोले—"तब हमार रजाई का भई ?" "जहान्नुम में गई।" "हुँवा कसस गई ? हमतो हियाँ छोड गएन रहा।" "तेरे को कुछ याद भी है ? तू इस गड्डा में कहाँ था ? हाल ही तो आया है।" जब इसका समर्थन सभीने कर दिया तब तो लम्बरदार साहबकी आँखे खुली, चारों तरफ़ देखकर कहने लगे—"हाँ फुरे। हियाँ तो बिंचियापर न तो गद्दी है अउर न ऊ सहबवा जौन हमसे टिकरिया माँगत रहा।" यह मौक़ा मेरे लिये उन्हें तसल्ली देने और साथ ही वहाँ अपना बड़प्पन, हमदर्दी और भलमनसाहत दिखानेका बड़ा अच्छा था। इसलिये मुँह लपेटे ही दोनों टिकट निकालकर दिखाते हुए बोल उठा—"घबड़ाइये नहीं मेरे पास ही टिकट है।"

"अरे को है ? अकिल बहादुरा ? तोंय सरऊ मुँह ढाँक पड़ठ रह्यो अउर हम तोंका हेरत हेरत मर गयन। तनिकौ बोल्यो तक नाहीं। भली

लिये हम तोका साथे लायन रहा कि तू टिकस लेके अलगट बइठ जाओ अउर हमका चार रुपया डाँड देवे के पड़े? यह देखो रसीद। चलके हमका वहीं गाड़ीमें बैठाओ जहां हमार गठरी अउर रजाइ धरी है। अउर टिकस दिखायके सहबवासे हमार रुपइया फेराओ। नहीं सरऊ हीमे तोहार खून पी लेबे"। इतनी बेढब तारीफ़ोंके बाद वहाँ भला कौन गलामानुस ठहर सकता था।

अब तो सभी कम्बख्त मुझको आँखें फाड़-फाड़कर घूरने लगे। बैठना मुश्किल हो गया आखिर गाड़ी रुकते ही बरा चुपकेसे उतर जाना पड़ा।

मगर अब जिस गाड़ीमें लम्बरदार साहबकी रजाई झाँकने चले तहीं कुत्तेकी तरह दुतकारे गये। यह लम्बरदार साहब की बदौलत। उनकी सूरत ही ऐसी थी कि दूर ही से लोग हाँक लगाने लगे कि यहां नहीं, वहां नहीं। चलो आगे बढ़ो। कोई कहता—हाँ, हां यहाँ जगह नहीं है। कोई डाँट बताता—आंखें फूट गई हैं। देखते नहीं यह ज्योढ़ा है। आखिर नतीजा यह हुआ कि गाड़ी निकल गई और हम दोनों प्लेटफारमपर मुँह बाये खड़ेके खड़े रह गये।

मैंने लम्बरदार साहबको बहुत कुछ ढाढ़स देकर कहा—अच्छा हुआ कि आपको अपनी रजाई और गठरीसे छुट्टी मिली। लखनऊ ऐसी जगह में आपको घुग्घू बनकर जाना ठीक भी न था।

इसपर वह एकदम अगिया बैताल हो गये और इतनी हाय तोबा मचाई कि कुछ न पूछिये। मेरी सूरत तक देखना नहीं चाहते थे। मगर थोड़ी देरके बाद आप ही धीमे सुरोंमें बोले—भइया अक़िलबहादुर। "कहिये"। तनी हमहूँ को ओढ़ाय लेउ।

(३)

दूसरी गाड़ीसे गरते-खपते आखिर लखनऊ किसी न किसी तरह पहुँच ही गये। मगर अब यहाँ आकर जाया कहाँ जाय यह समस्या टेढ़ी निकली जिसका सुलझना लम्बरदार साहबके लखनऊ आनेकी बिना असलियत जाने मुश्किल था।

"कहिये अब कहाँ चलना चाहिये?"

"हम ही जानित तो तुका राये का करे के लाइन?"

"अगर हमारी रायसे काम करना है तो हम तो यही कहेंगे कि टिकट कटा कर चुपके से घर लौट चलिये।"

"काहे?"

"क्योंकि बिना ठिकानेके कहीं जाना और आसमानमें ढेला फेंकना दोनों बराबर है।"

"यहि का मतलब?"

"यही कि ठिकाना पानेके लिये आखिर घर ही भागना पड़ेगा।"

"मुल काहे? यही-तो पूछित है।"

"क्योंकि यह भी कोई बड़ा शहर मालूम होता है जहाँ भलेमानुसोंको क़दम न रखना चाहिये।"

"तब हमार दवाई कसस होई?"

यह देह दशा और बीमारी? बाल पक गये थे। अधेड़ थे। कुछ दाँत निकल जानेसे मुँह झरोखेदार था ज़रूर। फिर भी घुलते-घुलते इन्हें बरसों लग जाते तब कहीं यह यमराजके हाथ लग सकते थे। इसलिये दवाका नाम सुनकर मैं यकायक चकरा उठा।

अक़िल बहादुर

"आप को हुआ क्या है ?"

तब तक पास के ताँगेवाले ने धड़से कहा—"अजी वाह मियाँ यह कोई पूछनेकी बात है ? देखते नहीं सारे बदन में सोंधा चढ़ा हुआ है। आइये क़िब्ला, आपका चलकर ऐसा इलाज करा दूँ कि चार दिन में आप सेंठा हो जाँय। आइये तो।"

"भय्या अकिल बहादुर !"

"जी"

"यह तो तू हूँ से जानों सड़गर पड़े हैं। देखा, बोलत करारा है।" ताँगेवाले ने फिर हाँक लगाई—"अजी सोचते क्या हैं ? आइये, दो ही रुपये दीजियेगा। शहरका शहर घुमाऊँ और इलाजका इलाज करा दूँ। आपका बदन भी कोई बदन है ? अजी तोबा कीजिये। यहाँ बड़े-बड़े फीलबदन आये और दो दिनमें सींकिया पहलवान होकर चले गये।"

अब तो लम्बरदार साहब बड़े तपाकसे बढ़े और पूछा "तो तू उनका जानत हौ जौन······।" "खूब कही। वह मेरे मामूके सगे भतीजे हैं। मगर अपना-अपना नसीबा और अल्लाहका देन। सामने ही होटल है। मजेसे होटलमें ठहरिये और रात दिन इलाज कराइये। बस अब आँख मूँद झटसे बैठ जाइये। दमके, दममें, पहुँचाये देता हूँ। देखिये पानी आ रहा है।"

"मुल हम दूबर पातर होवै नाहीं आयन हैं। हम उनके दवाई किया चाहित है जौन बूढ़न का जवान बनावत हैं।"

मेरी आँखें निकल पड़ीं और ताँगेवाला भी गड़बड़ाकर बोल उठा—"सुभान तेरी कुदरत ! अब रंग लाई गिलहरी। मगर तुरन्त ही

सम्हलकर कहने लगा—अजी बस-बस वही तो हैं यही तो मेरे कहने का मन्शा था। वरना बिना जवानी आये भला कहीं पहलवानी आ सकती है ज़रा समझ पर झाड़ू फेर डालिये। कुछ ऐसे वैसे हैं? एक्तायें ज़माना हैं। बावनों ज़िलेमें मशहूर हैं। वल्लाह जिसे छू दें साला गुलफ़ाम हो जाये। आप किस खेतकी मूली हैं? अजी आपसे भी खबीस-खबीस, जिनके न पेटमें आँत और न मुँहमें दांत ऐसे गबरू जवान बन गये कि खुदा झूठ न बुलवाये गँडेरियाँ चूसने लगे, गंडेरियाँ—वल्लाह।"

इस फिरालती हुई ज़बान पर लम्बरदार साहब ऐसे फिसले कि ताँगेकी पिछली सीट पर धमसे बैठ गए। एक तो ताँगा कम्बख्त योंही पीछेकी तरफ झुका जाता था उस पर लम्बरदार साहबके आसग जमा देनेसे वह और भी लटक गया। ताँगेवालेके साथ मेरे आगे बैठनेसे भी उनका बोझ बराबर न हो सका। यहां तक कि ताँगेवाला क़दम-क़दमपर यही रट लगाये रहा—"अरे म्यां ज़रा आगे खसके रहो। देखते नहीं कितना उलार है।"

नाकमें दम हो गया पानी की बौछारों से और तबीयत परेशान होने लगी। कहाँ तक मैं आगे खसकता? आखिर आजिज़ आकर लम्बरदार साहबसे मैंने चिल्लाकर कहा—"ज़रा सांस ऊपर चढ़ाये रहिये। कुछ तो वज़न कम रहे।"

सड़क पर और भी ताँगे और इक्के जा रहे थे। हमारे ताँगेवाले ने उनके बराबर पहुँचते ही ललकारा—"अबे क्या टिखटिख लगाये है। हुदा अपनी टिखटिखिया।"

वह भी लखनवी था। तुर्की बतुर्की बोला—"वाह मेरे मिट्ठीके शेर, अच्छी उड़ाई। अभी छोड़ दूँ तो बेटा हुवा न पावो।"

"अबे जा देखा हुआ है। पचारा छिपल्लीकी घोड़ी पर यह गुमान।"

"बद-बद के हो न जावे?"

"अच्छा रहो।" लीजिये घुड़दौड़ शुरू हो गई, तांगे आंधी होगये, हटो-बचोके शोरसे आस्मान गूँज उठा। यहाँ दम फूलने लगा। होश गुम हो गये। मैंने झिचकिचाकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। राहियोंने थपोड़ियाँ पीटना और हल्ला मचाना शुरू कर दिया। तांगेवाले और जोशमें आ गये।

जब ज़रा चालमें सुस्ती आई मैंने अपनी आँखें खोलीं और घूम कर लम्बरदार साहबकी ओर देखा वैसे ही चिल्ला पड़ा—ओ! हो!!

"रोको, रोको, रोको?"

"क्या हुआ क्या?"

"हमारे लम्बरदार साहब क्या हुए।"

उसने पीछे देखा फिर नीली-पीली आँखें करके उल्टे मुझी पर फिरंट हो गया। "बस जनाब चुपकेसे मेरा किराया ढीला कीजिये। यह लखनऊ है यहाँ चालाकी धरी रह जायगी। इसीलिये मैं कभी देहातियों को बैठालता नहीं। अच्छे मिले, किरायेके डरके मारे एक साहब पहले ही उचक भागे। खुदा बचाये ऐसे उचक्कोंसे। लाइए सीधी तरह किराया दिलवाते हैं या ले चलूँ चौकी पर? बन्द करा दूँ तो मिजाज़ ठिकाने हो जाँय। अरे क्यों यहाँ कोई सिपाही है?"

अब तो लम्बरदार साहब पर मुझे भी बड़ा गुस्सा मालूम हुआ। मुझे फँसा कर आप चलते बने। यह कौन सी भलमनसाहत थी। आखिर उसके नास पर दो के बदले एक रुपया देकर किसी तरह तांगेवालेसे पिंड छुड़ाया और उनको ढूंढनेके लिये पैदल लौट पड़ा।

क़रीब एक फ़रलांग गया हूंगा कि देखता क्या हूं कि उधरसे लम्बरदार साहब सारे बदन पर कीचड़ लपेटे थपोड़ी पीटनेवालोंके झुण्डके के साथ मजेमें चले आरहे हैं। इस बेतुकेपनका मानी मैं उनसे लपककर पूछने ही वाला था कि इतनेमें, वह मुझे देखते ही डंडा तान कर यह कहते हुए दौड़े—"सरऊ हमार आन लेंवेके लिये कह्यो रहा कि टांग ऊपर चढ़ाय लो। हमका गिरायके तांगा भगाय चला गयो। रोक्यो तक नाहीं।"

भइ वाह! मैंने उन्हें सांस ऊपर चढ़ानेको कहा था और आप टांग उठा बैठे। पिछली सीट पर पावदान ही के सहारे बैठनेवाले अटके रहते हैं। जहां सहारा छूटा तहां आदमी गिरे न तो क्या हो? मगर उस वक्त, उनकी भूल बतानेके लिये उनके पास फटकना अपनी खोपड़ी तुड़वाना था। क्योंकि थपोड़ी पीटनेवालोंने "लेना है लेना है" कहकर उन्हें मुझपर ऐसा हुल्कार दिया कि आगे-आगे मैं और पीछे-पीछे डंडा ताने दौड़े वह।

(४)

इस मामलेमें तो कलकत्ता बहुत अच्छा है कि उल्टा चलो या सीधा, भलमानुस साथ रखो या लम्बरदार साहबको, वहां कोई भकुआ निगाह उठा कर देखनेवाला नहीं। और यहांका हाल कुछ न पूछिये। उंगुलियां उठानेवालोंकी कमी नहीं। छेड़ कर पीछे पड़ जायं। और कुछ नहीं तो आवाजें तो ज़रूर कस देंगे। पता भर मिल जाय कि यह परदेसी है, बस वह इनके बापका शिकार होगया। देहातियोंसे तो ठठोली करनेका इनका पैदाइशी हक़ है। सुभानअल्ला, माशअल्ला, तोबा तिल्ला, इल्ला-बिल्ला और न जाने क्या-क्या बलबलाकर ऐसे चिमटेंगे कि उसे भागते

तकका रास्ता न मिले। इसी मुसीबतमें हमारे लम्बरदार साहब भी फंसा गये।

हज़रत दौड़ते-दौड़ते ज़रा दम लेनेके लिये रुके। और मैंने भी अब अपनी खोपड़ीकी सलामती देख उनके आगे अपनी चालकी घोड़ी धीमी की। पानी बन्द होकर यकायक धूप निकली, वैसेही एक गलीसे दो मुछमुण्डे ओढ़नी ओढ़े औरतोंसे भी ज़्यादा गटकते हुए निकल पड़े। मैं तो उनकी पजा देखता रह गया। तबतक कम्बख्तने लम्बरदार साहबको देखते ही छेड़खानी शुरू कर दी। एक, हाथ मटकाकर एक अजीब रागसे बोली मारने लगा और दूसरा ताली बजाकर "ओय होय" कहने लगा।

"बिन टोंटका बधना।"

"ओय होय!"

"बे दुमका भैंसा।"

"ओय होय!"

"दो टांग का मेढक।"

"ओय होय!"

अब तो लम्बरदार साहब घबराकर मुझे बड़े जोरोंसे पुकारने लगे—

"भय्या अक़िल बहादुर, अरे ओरे भय्या अक़िल बहादुर।"

"कहिये।"

"तनी रुकौ भाई। इतना न जलिद्याओ।"

रुकनेकी कौन कहे मैं खुद ही लौटकर झट उनके पास पहुंच गया अब उन ओढ़नीवाले मुछमुण्डोंने दूसरा राग छेड़ा।

"ओहो! छोटी बहिनी आई।"

लखनऊमें

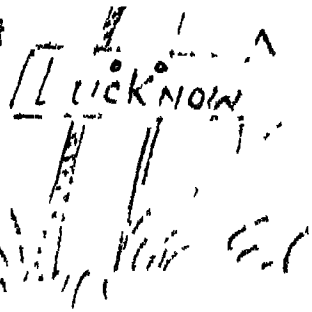

"ओय होय !"

"खालाजानकी बूबू आई ।"

"ओय होय !"

"दाढ़ीजारकी बेगम आई ।"

"ओय होय !"

हम दोनों जल्दीसे पासवाले होटलमें घुस गए। होटलमें भी यही हाल। अभी इतमीनान से बैठने भी नहीं पाये थे कि बोलियोंकी झड़ी लग गई।

"खुरासानी है खुरासानी ।"

"नहीं जी रेगिस्तानी है ।"

"वाह वाह ! एक लगूंरी है और एक तन्दूरी। देखो कैसा डबलरोटी हो रहा है ।"

"अजी, जाओ भी नसल भैंस की है सिर्फ अभी दुम नहीं निकली है ।"

"मुंहमें डंडा खोंस दो तो हथनी का मजा मिल जाये, यह क्यों नहीं कहते ?"

"अमां खैरियत समझो कि चरकटा भी साथ है ।"

जहां पाजीपन की इतनी भरमार हो वहां भय्या अक़िल बहादुरकी अक़्ल क्या खाक काम करती ? इसलिये अब तक मन मारे रहा। जी में आया था तो लम्बरदार साहबका साथ छोड़ दूं क्योंकि गेहूंके साथ घुन भी नाहक पिस जाता है और इन्हींकी वजहसे मुझे भी यह सब बातें सुननी पड़ रही हैं, या फिर अपनी अक़्लका तमाशा इन लोगोंको दिखा दूं। सब अपना मुंह लेकर रह जांय। और यह मैंने सुन रक्खा था कि

जबतक लखनऊवाले अपना जवाब नहीं पा जाते तबतक उनकी ज़बान बन्द होना नहीं जानती। मगर बातकी क़दर तभी होती है जब उसकी तारीफ़ करनेवाला भी कोई हो। और यहां इसकी तो खास ज़रूरत थी। इसलिये मैं चुपके-चुपके लम्बरदार साहबसे कहने लगा—

"सुन रहे हैं यह आपहीपर लोग बोली मार रहे हैं। और अब देखिये—"

इसके बाद मैं कहनेवाला था कि इन लोगोंको मैं कैसा तुर्की बतुर्की जवाब देने जारहा हूं, और आप हां में हां मिला कर मेरी हर बातकी खूब तारीफ़ करते जाइयेगा। चाहे आप समझ पावें या नहीं, मगर तारीफ़ करनेमें ज़रा भी कसर उठा न रखियेगा। नहीं इन लोगों पर ज़रा भी असर न पड़ेगा।

मगर हाय हाय! मैं अपना इरादा उनसे कह भी न सका कि बीचमें हज़रत बमक कर गर्ज उठे—

"तो सरऊ तुहीं तो हमका हींयां लायो..."

उनकी ज़बान बन्द करनेकी जल्दीमें कोई तरकीब न सूझी तो झट मैंने ताली बजाकर "ओय होय" कह दिया और कहता चला गया, क्योंकि इसका तमाशा और असर मैं रास्ते में खूब देख चुका था।

"अरे! यू का? तूहूं सरऊ पगलानयो का?..."

"ओय होय!"

"मारत मारत सरऊ भुरकुस निकाल देब..."

"ओय होय!"

"अबहीं सरऊ मुहें में डंडा खोंस देब..."

"ओय होय !"

समझता था कि इस "ओय होय"के नुस्खेने जिस तरहसे सड़क पर लम्बरदार साहबको यकायक ठण्डा कर दिया था उसी तरह यहां भी वही असर दिखायेगा। यह न सही तो कमसे कम लम्बरदार साहबकी गालियों को ठठोली बना कर मेरी आबरू तो बचा ही लेगा। उसके साथ यह भी जाहिर कर देगा कि यह "ओय होय"का करनेवाला कोई अनाड़ी नहीं बल्कि हंसी-दिल्लगी करनेका लखनउवा ढंग खूब जानता है। और तभी तो यह उनके ही हथियारसे उन्हीं पर अपना हाथ साफ कर रहा है। क्योंकि तब यह गालियां मुझ पर पड़नेके बदले "ओय होय"से टकरा कर वहां-वालों पर पड़ रहीं थीं। कितनी अच्छी मार थी। अपनी आबरूकी बचतकी बचत और मारका मार। मगर क्या जानता था कि लखनउवा ढंग लखनऊवालों ही के कामका होता है, दूसरोंके नहीं। यहां आबरू बचानेके फेरमें खोपड़ी भी गई थी। न जाने कैसे बाल-बाल बच गई। यही बड़ी गनीमत हुई। क्योंकि लम्बरदार साहबने किटकिटा कर इतने जोरसे सोंटा घुमाया कि अगर मैं जल्दीसे लोटा उठा कर वहांसे चल देनेमें फुर्ती न दिखाता तो गांव वाले मेरे लिये जरूर दाढ़ें मार-मार कर रोते।

गुसलखानेका रास्ता बताने वाले होटलके नौकरने मुझसे सीढ़ियों पर पूछा—"क्या आपके बापका दिमाग खराब है ?"

यह सुन कर गुस्सा तो मुझे जरूर आया, मगर इस सवालसे अपनी रही-सही इज्जत बचानेकी झट एक चाल सूझ गई।

"दिमाग खराब होता तो यहां उन्हें इलाज करनेके लिये लाते ? यह

क्या, अगर घर पर कोई उनका हाल देखे तब हम लोगोंकी मुसीबत समझे। यह भाई यहां सब लोगोंको बता देना ताकि सबको मेरी असली हालत तो मालूम हो जाय, मगर वह मेरे बाप नहीं हैं।"

लम्बरदार साहब रुपये वाले थे। हैसियतमें मुझसे बहुत बढ़े-चढ़े थे। और इसीके बल पर वह गांवमें सब किसीसे अपनी सेवा कराते थे, यहांतक कि मैं भी उनका कहना टाल नहीं सकता था और इसीलिये उनका साथी बन कर सफर कर रहा था। फिर भी ऐसे बेवकूफका, परदेशमें अपना बाप क्या कोई रिश्तेदार भी समझा जाना मुझसे गवारा न हो सका और बिना रिश्तेदार बने इतनी गालियां खाना और भी बुरा था। वर्ना तब गुलाम समझे जानेमें कोई कसर न थी। इसलिये मैंने कह दिया—"मेरी जोरूके बाप हैं।"

जब गुसलखानेसे लौटा तो देखता क्या हूँ कि लम्बरदार साहबको चार आदमी पकड़ कर रस्सियोंसे बान्ध रहे हैं। देखते ही मेरे होश उड़ गए। और सर इतने ज़ोरसे चकरा उठा कि गिरते-गिरते बचा। आखिर लोगों की बात-चीतसे पता चला कि लम्बरदार साहबके पागलपन और उनकी रिश्तेदारीका हाल नौकरकी ज़बानी जब लोगोंको मालूम हुआ तब सभी डरके मारे अपने-अपने कमरोंमें भागे। मगर एक साहब बहुत होशियार बन कर दूसरे लम्बरदार साहबके पागलपनका इम्तहान लेनेके लिये पूछताछ करने लगे—"क्यों साहब आप कबसे पागल हैं? ऐसी हालतमें आपके दामाद आपको अकेला छोड़ कर क्यों चले गये?..."

लम्बरदार साहब यों ही मारे गुस्सेके अन्धे हो रहे थे, इस पर इस तरह की जो बातें सुनी तो एकदम आपेसे बाहर हो कर झपट पड़े और हजारों

गालियोंके साथ लगे अपना दिहाती हाथ दिखाने। फिर तो उनके पागल होनेमें किसीको ज़रा भी शक नहीं रहा, जिसका नतीजा यह हुआ कि वह इस तरह पकड़ धकड़ कर इस तरह बान्धे-छान्दे जा रहे थे।

इतनेमें लोगोंकी नज़र जैसे ही मुझ पर पड़ी वैसे ही सबके सब चिल्ला पड़े—"अरे! इस जनखेको भी पकड़ो। इसका भी दिमाग कुछ कम खराब नहीं है। देखा नहीं, यह किस तरह तालियां बजाकर 'ओय होय' कर रहा था? पकड़कर दोनोंको यहांसे निकाल बाहर करो। यह होटल है, कोई पागलोंके लिये पागलखाना थोड़े ही है।"

वाहरे! लखनऊ! धन्य तेरी समझ!

(५)

जहां हज़रतगंज, नबीगंज, मुट्ठीगंज, डालीगंज, गोलागंज, हसनगंज, हुसेनगंज, रकाबगंज, मशकगंज, एहियागंज, ट्टरियागंज और न जाने कितने अल्लम-गल्लम गंज हों वहां शहर गंजा नहीं तो क्या गुन्जान रह सकता है? तभी तो आबादीके बीच-बीच में घासके खेत हैं, यहां तक कि बीच बाज़ार में भी। और लखनऊ वाले ज़बानके इतने हैं कि मारें छुछुन्दर तो कहें हुमदराज़ मारा है। इसलिये वे लोग इन घासके खेतोंको घासका खेत नहीं, बल्कि बड़ी शानसे विक्टोरिया-पार्क, अमीनाबाद-पार्क, अमीनुद्दौला-पार्क और न जाने क्या-क्या पार्क कहते हैं। और सिंचाईमें इतनी मिहनत करते हैं कि क्या कोई धानका खेत सींचेगा, तभी तो राह-चलते लम्बरदार साहबने, जो होटल वालोंके प्रतापसे वहांसे निकलते ही भीगी बिल्ली बन गये थे, मुझसे पूछा—"कहो भइया अक्किल बहादुर सहरिया भरेमें यह ठांवे ठांव इतना घास काहे लगावा है? जुआर बोय दीन जात तो मारे अनाज के ढेर होय जात।"

ताज्जुबमें तो मैं भी था। मगर एक राहीकी बात-चीत में इतना सुन चुका था कि—"अमां घास खा गए हो क्या?" इसलिये अक़्ल पर ज़ोर लगा कर जवाब दे दिया—"जिस जगहकी जो ख़ुराक होती है वहां उसीकी खेतीबारी ज़्यादा होती है।"

"अरे! यह घासिया खाई जात है?"

"यह देखिये वह क्या झुण्डके झुण्ड बैठे खोंट रहे हैं वर्ना यहां इतने आदमियोंके बैठनेकी क्या जरूरत थी?"

"तब जानो कौनो अजूबा मेर के है। आओ चलो तनी हमहू देखी तो।"

लम्बरदार साहब पार्कमें बैठ चुपके घास खोंटने-लगे। मुझे भी उनके हुक्मसे वही करना पड़ा। इतनेमें पाससे एक आदमी टहलता हुआ निकला। लम्बरदार साहबको सब्र न हो सका। चट उसे मुट्ठी भर घास दिखाकर पूछ बैठे —"कहो भइया यह घसिया खाई कसस जात है? कच्चै कि पकायके?"

भला यह पूछनेकी बात थी? इससे तो यहांके लिये अपना ही अनाड़ीपन ज़ाहिर होता था। फिर वह इस सवाल पर क्यों न ठहाका मार कर हँसता? खाली हँसकर ही नहीं रह गया, बल्कि उनसे हँसनेके लिये दस-बीस आदमियोंको बुला कर और जमा कर लिया। शहदकी मक्खियोंसे घिर जाना लाख बार अच्छा, मगर लखनऊ वालोंके बीचमें पड़ना गोया अपना सर ख़ुद ही भाड़में डालना है। वहां हिन्दू, मुसलमान सभी क़िब्ला और सभी पाजामा हैं। पता नहीं मिलता कौन मुन्शी है कौन मोची। जिसे देखिये वही सुथना डाटे नवाब बना चलाह कर रहा है! फिर किससे किस तरह बात की जाए—समझना मुश्किल था इसलिये हमलोग घास वहीं छोड़ कर चलते बने।

मकानात बड़े, छोटे, मझोले, हर किस्मके। एक मंज़िलसे लेकर चौ-मन्ज़िला तक। गुम्बदनुमा और सपाट भी। सड़कें एक-से-एक चौड़ी और साफ़-सुथरी। गलियां लम्बी पतली तरह-तरहकी। मोटर, गाड़ी, तांगा, एक्का, रावीकी दौड़ादौड़ हर तरफ़। बुर्क़ा, साया, साड़ीकी भी रह रह कर झलक। हैट, पैंट और नेकटाईका तो भेड़ियाधसान। मगर धौंधाराम और भय्या अक्किल बहादुरके टिकनेके लिये कहीं ठिकाना नहीं। तब ऐसे शहरको लेकर कोई चाटे?

बिना किसीसे पूछे ठहरनेकी जगहका पता पाना और मुमकिन था और पूछना अपने सर ख़ुद ही छेड़ कर आफ़त बुलानी थी। आख़िर सड़क पर एक धोती दिखाई पड़ी। मैंने समझा यह अपने मेलका है। ज़रूर भलामानुस होगा। शक्ल सूरतसे भी भलमनसाहत टपकती थी। नाम जानता न था। इसलिये मैं "धोतीप्रसाद, अजी ओ धोतीप्रसाद" कहता हुआ लपका।

"गा वहशत! क्यों जनाब आप किसको पुकार रहे हैं?"

"अजी आप ही को। भला आपके शहरमें होटलोंको छोड़कर भलेमानुसोंके लिये और भी कहीं ठहरनेका ठिकाना है?"

"है क्यों नहीं? सैकड़ों हैं। मगर आपका वहां जाना ठीक नहीं।"

"तब कहां जायं?"

"मीचे कांजीहौस चले जाइए।"

भई वाह! लंकामें जो है वही बावन हाथका। मैंने क़सम खा ली कि अब किसीसे यहां बात न करूँगा।

घूमते-घूमते आख़िर शाम होगई। एक बड़े से मकानके सामने मोटर

और तांगोंकी भीड़ लगी हुई थी और सैकड़ों आदमी उस मकानमें दनादन घुसते चले जाते थे। मैंने लम्बरदार साहबसे कहा कि इस जाड़ेमें सड़कों पर घूमनेके बदले तो यही अच्छा है कि आइये हम लोग भी इसमें घुस चलें।

हर दरवाज़े पर एक यमदूत बैठा हुआ मिला जो कम्बख्त बिला टिकटके भीतर जाने नहीं देता था। अब पता चला कि इसके भीतर कोई तमाशा हो रहा है जिसे वहां वाले "बोलता सिनमा" या "टाकी" कह रहे थे। यह कोई नई चीज़ थी क्योंकि अब तक हम लोगोंने इसे कभी देखा न था। कलकत्तेमें भी इसे देखनेकी मुझे नौबत नहीं आयी थी। ख़ैर यहां तो ओससे बचनेकी फ़िक्र थी। इसी बहाने सही। आखिर टिकट ले कर भीतर पहुंचे और सबसे आगे जा कर बैठे।

कुछ ही देरके बाद तालियों और सीटियोंके बीच में घन्टी बजी और उसके साथ ही कमरा अन्धेराकुप हो गया! और सामने दीवाल पर यकायक एक अजीब दुनिया दिखाई पड़ने लगी। हम दोनों दंग होकर रह गए। के बाद मस्ती ऐसी छाई कि दीन दुनियाकी कुछ खबर न रही। बस यही मालूम होता था कि एकबारगी इन्द्रासनके अखाड़ेमें आ गये। और सब्ज़परीका गाना सुन रहे हैं।

वह सचमुच सब्ज़परी थी। राजबकी चपल और बदनकी चुलबुली कि देखते ही राल टपक पड़ी और लम्बरदार साहबका हाल तो कुछ न पूछिये। छुटाई, बड़ाईका ख्याल एक दम भूल गये और आठ दस दफ़े हांफ कर मुझसे कहने लगे—"अरे! अक़िल बहादुर! यह तो हमका बहुत खूबसूरत है हो। मानो जान गई कि हम लम्बरदार होई।"

मैंने कुछ बोलना मुनासिब नहीं समझा। उन्होंने फिर मुझे खोदा—

"देखो देखो कस चितवत है। तनी ओसे कह देयो कि हमरे दुई सौ बिगहा के सीर अउर हजार बिगहा के जमींदारी है।"

मैंने जल कर कहा—"मगर सब रहन है"

लम्बरदार साहबने झट से मेरा हाथ दबा कर कहा—"चुपाय रहो यह न बताओ।"

इसके-बाद-कई दफ़े मूंछे ऐंठी। कई दफ़े पगड़ी ठीक की। तब-तक पीछे बैठने वालोंने डांट बताई—"अरे! ओ पगड़ी वाले सीधे बैठो नहीं पगड़ी उछाल दी जायेगी।" मगर उन्हें यह सब कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। वह तो मस्त हो कर आंखों और हाथोंसे इशारा करनेमें लगे हुए थे। आखिर गाना खत्म होते ही बोल उठे—"जाने भगवान तू भल नीक गावत हो। दयु तूका अपने हाथेसे गढ़िन है। रामदे! आहाहाहा!"

फिर पीछेसे घुड़की मिली—"अबे चुप!"

इतने में वहां एक आदमी आ पड़ा। और आते ही गालियां देता हुआ राजपरी पर झपटा। वह चिल्ला कर भागी। मगर उसने हाथ पकड़ कर उस परीको खींच लिया। वह रोती हुई जमीन पर गिरी। लम्बरदार साहब बिगड़ कर चिल्लाने लगे।

पीछेसे किसीने कहा—"मार सालेको।"

उस वक्त मुझे भी बड़ा गुस्सा आ रहा था और मैंने भी ललकारा—

"सचमुच साला बड़ा हत्यारा है। इसे तो बिना मारे छोड़ना नहीं चाहिये।"

जब तक लम्बरदार साहब कूद कर अखाड़ेके पास पहुंच गए, और यह कहते हुए कि—"नूसोरी मेहराकी! जानत नहीं हो सरऊ हम हीयें पहुंच हन!"—डन्डा घुमा कर खटाखट जमाने लगे। तमाशेके पर्देके चिथड़े उड़ गए।

कोहराम मच गया। सब लोग—"मार साले को, मार साले को"—कह कर दौड़ पड़े। खेल बीच ही में बन्द हो गया। मैं तो भरभड़में भाग कर किसी तरह उनसे सड़क पर आ गया। मगर ईश्वर जाने लम्बरदार साहब पर क्या बीती।

(६)

होटलसे पागल बना कर हम लोगोंका निकाला जाना इस वक्त, लम्बरदार साहबके काम आ गया। क्योंकि संयोग वश उस होटलका एक आदमी भी दर्शकोंमें था, जो लम्बरदार साहबको देखते ही बोल उठा—"अरे! यह तो पागल है। भागो भागो। यह डन्डा फेंक कर मारता है। इसीलिये हमारे होटलसे निकाला गया।"

फिर पागलके पास कौन फटकता? जो उनसे चिमटे हुए थे वह भी उन्हें छोड़ कर दूर भागे। लम्बरदार साहब अपना बदन झाड़ते और तोन्द सहलाते हुए बाहर आ गए। मगर इस बातका उन्हें बहुत अफ़सोस था कि वह सब्ज़परी यकायक कहां लापता होगई। मैंने अपनी ख़ैरियत अपनी ज़बान बन्द रखने ही में देखी।

इस जाड़े पालेमें रात कैसे और कहां काटी जाय यह मसला अब तक तय न हो सका। आखिर एक गलीमें एक हलवाईकी दुकान पर, जब हम लोग पूरियां खा रहे थे तो उसीके सामने वाले मकानमें बहुत से छिकके

और पाजामें जाते हुए दिखाई पड़े। मैंने हलवाईसे पूछा यह लोग कहां जा रहे हैं। उसने बताया मशायरेमें।

लम्बरदार साहब बोल उठे—"मसायरा का है हो ?"

हलवाईने हंस कर जवाब दिया—"शेर शायरीका कारखाना।"

समझमें तो मेरी भी नहीं आया। मगर मैंने अपनी अक़िलके ज़ोर से लम्बरदार साहबको चुपकेसे बता दिया कि यह भी एक तरहका तमाशा है।

मगर मशायरेमें हम दोनोंको बड़ी नाउम्मेदी हुई। 'वाह वाह' और 'सुभानअल्लाह' का शोर इतना बढ़ा कि कानके पर्दे फट जाँय मगर नाचनेका ढंग किसीको भी नहीं मालूम। घुटने टेक कर, उचक कर, कमर झुका कर फिर चारो तरफ़ घुमनी परइया करते हुए ख़ाली 'रालास'का भाव बताना भी भला कोई नाच में नाच है! आखिर लम्बरदार साहब बड़बड़ा ही उठे—"जाव बाट पड़ो! एहसे नीक तो भाड़नके नाच होत है। न तबला, न सरंगी, न घुंघरू, झूठे नाचे अउर गावे चले हैं। एक कड़ी टेढ़ मेढ़ गाइन अउर लागे करिहांव झुकायके चारो ओर घूम घूम हाथ डुलावे। न भवा हमरे हींयां के धोबिया, वह बिरहा गायके अस फिकरी बन जात कि सबै आपन आपन मुहं लै के रह जाते।"

आस-पास वाले उनका मुहं देखने लगे। मैंने उनके कानमें कहा—

बस पर गवहेको भी बाप कहा जाता है। जैसा यह लोग कह रहे हैं वैसा रह-रह कर कहते जाइए और मज़ेसे बैठे-बैठे सोइए। किसी तरह रात तो कटे।"

मगर वहां "वाह वाह" के मारे कहीं सोना नसीब हो सकता था?

नाकमें दम होगया। जहां ज़रा झपकी आती तहां "वाह वा वा वा ना" और "वल्लाह वल्लाह" की चिल्लाहटसे खोपड़ी भिन्ना उठती। ख़ैर करता क्या न करता? मैं भी बीच-बीचमें जब आंख खुलती तब एकाध बार 'वाह वाह' की हांक लगा देता था। और लम्बरदार साहब मुझसे यह कह कर कि—"हमरियो ओर से तुहीं कहत जाओ।"—मज़े में खर्राटे भरने लगे।

क़रीब साढ़े चार बजे मुशायरे की गर्मी कुछ ठंडी पड़ी। उस वक्त आस-पास वालोंकी निगाहें हमलोगों पर बार-बार पड़ने लगी।

एक साहबसे न रहा गया। लम्बरदार साहबको जगा कर बिगड़ ही उठे—"वाह म्यां! यहां सोने आये हो"

बेचारे लम्बरदार साहब कच्ची नीन्दमें जाग पड़े और पिनपिनाकर बोले—"नाहीं हो। वही तो करित है जौन तू सभे करत हो। यह देखो—"

यह कह बौखलाये हुए उठे और एक सांसमें झड़ी बान्ध दी—"हुआं! हुआं! हुआं बिल्ला! बिल्ला! बिल्ला!

मगर इसका नतीजा बुरा हुआ। हम लोगोंको उसी वक्त गोमती स्नान करने चल देना पड़ा।

रास्तेमें लम्बरदार साहबने कहा—"उन लोगनसे "हुआं हुआं" करे में हम बाजी मार ले गयेन। तब्बै सारे चिढ़ गए।"

(७)

सुबह हुई तो लम्बरदार साहबको टिकनेका ख्याल छोड़कर अपने इलाज करानेकी फ़िक्र सवार हुई जिसके लिये बेचारे इतनी आफ़तें झेल कर आए थे। मैंने भी कहा कि यह राय ठीक है कि जो इलाज करेगा वही हम लोगोंके ठहरनेका भी कोई इन्तज़ाम कर देगा। मगर, न जाने किस

मनहूस घड़ी हम लोग इस सफ़रके लिये चले थे कि दोपहर तक खाक छानते रहे मगर गुलफ़ाम बनाने वाले डाक्टरका पता न मिला। जिससे पूछो वही जवाब देता—"म्यां गर्दन उठाए बस नाककी सीध पर चले जाओ।"

भला यह रास्ता बतानेका कौन सा ढंग है ? मोड़ पर नाक कब सीधी रह सकती है ? आखिर बहुत सर मारनेके बाद एक डाक्टर साहबकी कोठी मिली और पड़ोसमें एक होटलका भी साइनबोर्ड था। बस समझ गये कि ठिकाने पर आ गये। डाक्टर साहब अपने मरीज़ोंसे छुट्टी पा कर हम लोगोंकी ओर मुड़े और पूछा—"कहिये जनाब आप लोग क्या चाहते हैं ?"

अब हमलोगोंमें बातचीत होने लगी।

"भइया अकिल बहादुर तही कहो।"

"नहीं। आपको कहना चाहिये।"

"हमसे कहत न बनी।"

"मगर इलाज तो आप ही को कराना है।"

तब तक डाक्टर साहब उकता कर मुझसे पूछ बैठे—"क्या मामला है जी ?"

"इन्हींसे पूछिये।"

डाक्टर साहब लम्बरदार साहबकी ओर फिर मुड़े।

"हम पढ़े लिखे नहीं हन। यही मारे इनका साथे आयन हैं। यही बतइहैं।"

"वाह ! मर्ज आपके और बताऊं मैं ? यह भला कैसे हो सकता है ?"

डाक्टर साहब बिगड़ उठे।

आखिर मुझीको कहना पड़ा।

"देखिये डाक्टर साहब इनकी तोन्द कितनी उथल है। इनके दांत कितने टूटे हैं और बाल कैसे पके हैं....."

इतने में लम्बरदार साहबने मुझे मना करके कहना शुरू कर दिया—

"अरे! पहिले हमरे बहनोई वाली बतिया तो कहो। सुनो हुजुर हम बताई। हमरे बहनोई ढेर पढ़े हैं। अखबार बहुत पढ़त हैं। वै जब इमरे हीयां आये दीवारीके दिन। सूकके दिन रहा जानो। कहो भइया अक़िल बहादुर सूके रहा न? तब अखबार बांचके सुनाइन कि नखलऊ मां विलायतसे एक दवाई आई है। मुल कवनो कवनो डाक्टरके पास। सबके पास नाहीं..."

मैंने जल्दीसे डाक्टर साहबको सुझा दिया कि—

"पहिले यह तो जान लीजिये कि यहां वह दवा है या नहीं।"

"भले चेत देवायो। हम तो भूलिन गयेन रहा। हां हजूर आपे गुलफ़ाम बनाइत है न?"

डाक्टर साहब इस वक्त नाक फुला कर फुफकारी भर रहे थे। इसीलिये कुछ बोल न सके।

लम्बरदार साहब फिर पूछ बैठे—"आपेके भाई तांगा हांकत हैं न?"

"बस बस हम तुम लोगोंकी बीमारी समझ गये। अब कुछ बतानेकी जरूरत नहीं है।"—यह कहते हुए डाक्टर साहब उठ खड़े हुए और रौब दिखानेके लिये कुछ झुंझलाहट भी दिखाई।

"वाह! हजूर वाह! जब बिना बताए सब कुछ जान लेत हैं तब

आपके नाव बावनो जिला मां काहे न मसहूर होय ? अच्छा अब आप हमार दवाई करी। मुल पहिले टिकेके लिये तो कोई जगह बताय दें।

"पागलखाना।"

यह शर्त तो बुरी लगाई।

मगर जब तक हम लोग कुछ कहें तब तक डाक्टर साहब भीतर घुस गये और फिर बाहर आनेका नाम ही नहीं लिया।

आखिर थोड़ी देरमें लौटकर आनेका इरादा करके हम लोगोंने भी उस वक्त चल देना मुनासिब समझा और वक्त काटनेके लिये भटकते हुए बनारसी बाग पहुंचे। वहां सैकड़ों आदमी छुप-छुप कर जंगली जानवरोंको देख रहे थे। लोगोंने बताया कि उधर जा कर शेर भी देख आओ। बिल्कुल अपनी कुदरती हालतमें है। उधर जाते ही शेर पर नज़र पड़ी। न बन्धा और न पिञ्जड़ेमें बन्द। देखते ही घिग्घी बन्ध गई। किसी तरह भर्राई आवाज़में इतना कह सका—

"अरे! बाप रे बाप! यह देखिये शेर पिञ्जड़ेसे निकल भागा है।"

लम्बरदार साहब इतने ज़ोरसे चिल्ला कर भागे कि आस्मान गूञ्ज उठा। कहीं साथ छूट न जाये इस ख्यालसे मैं भी दौड़ा। मगर उनसे दस क़दम आगे। उनकी देखादेखी दस-बीस आदमी और दौड़ पड़े। फिर तो पार्क भरमें भगदड़ मच गई। जिसे देखिये वही बेतहाशा भागता चला जाता है। मेरा दम फूलने लगा तो झट एक पेड़ पर चढ़ गया।

चौराहेका सारजेन्ट घोड़ा दौड़ाए हुए पहुंचा। और लगा पूछताछ करने। मगर कोई भागनेकी असली वजह बता न सका। बस सभीने लम्बरदार साहब ही को बताकर कहा कि हम तो इन्हींको भागते देखकर चौंके।

समझे कि शायद भूचाल आगया और ज़मीन फट कर दरिया निकल आया है। लम्बरदार साहबने क्या बताया पता नहीं। मगर इतना अलबत्ता देख सका कि दो-चार झापड़ मारे गये। और सारजेण्ट कड़क कर बोला—

"झूठ बोलटा है। शेरका चारो तरफ टो खांई है। वह किस माफ़िक हमला करने सकटा है? टुम पबलिकको घबड़ाय दिया और आवारागर्दी करटा है। टुमरा चालान होगा।"

लम्बरदार साहब भय्या अक़िल बहादुरको पुकारते ही रहे मगर कान्सटिब्लान उन्हें पकड़ कर ले गये।

भय्या अक़िल बहादुर सरकारके ऐसे दुश्मन न थे जो ऐसे वक़्तमें चूं करते।

इसलिये भीड़ हटते ही मैं चुपकेसे पेड़के नीचे उतरा और अपने दाम से टिकट कटा कर इनसे घर पहुंच गया। यहां लोगोंसे कह दिया कि मैंने लम्बरदार साहबको ठिकाने पर बड़े मज़ेसे पहुंचा दिया। अब वहां उनको मेरी कोई ज़रूरत न रही इसलिये चला आया।

मगर कल एक सप्ताह बाद लम्बरदार साहब न जाने कैसे अगाड़ी पिछाड़ी तोड़ाकर गांवमें यकायक टपक पड़े। और सुना है कि वह अपना इलाज करानेका ख़्याल छोड़ कर अब मेरा ही इलाज करने वाले हैं। ईश्वर ख़ैर करे।

॥ लखनऊकी सैर समाप्त ॥

घर और बम्बई

मुश्किलमें

(१)

यह न पूछिये कि अबतक मैं कहां था। न ज़मीन पर था न आसमान पर था। बल्कि असलियत तो यह है कि दोनोंके बीच एक अजीब मुश्किल में था। ऐसी मुश्किलमें, कि जिस अक्लकी बदौलत मैं अक्किल बहादुर कहलाता हूँ वही गुम हो गई थी तब अक्किल बहादुरी मेरी क्या खाक काम करती? यह सारी आफ़त कुछ अपनी वजहसे नहीं, बल्कि लम्बरदार साहब के कारन झेलनी पड़ी। यही तो रोना है। उस पर मुसीबत यह कि अपनी ग़लतियां देखनेके लिये फिर भी उनकी आंखें न खुलीं। सारा दोष मेरे ही सर डालते हैं। ऐसे बांगड़ुओंसे ईश्वर बचाए!

मेरी भलामन्साहत देखिये कि मैंने तो तन-मन-धनसे उनकी सेवा करनेमें अपनी जान लड़ा दी। क्योंकि भाई गांवमें रह कर लम्बरदारसे बैर करना,

चाहे वह मूर्खाधिराज ही क्यों न हो—अच्छा नहीं होता। तभी तो अब मुझे पता लगा कि हज़रत लखनऊसे सही-सलामत घर वापस आ गए हैं तब मुझे उनकी खुशामदकी फ़िक्र हुई। मौक़ा ही ऐसा था। वक्त पर गदहे को भी बाप कहा जाता है। गुस्सेकी आग खुशामद ही के पानीसे बुझती है। यद्यपि वह मुझसे नाहक ही बिगड़े हुए थे, क्योंकि लखनऊमें उन्हें आवारागर्दी की इल्लतमें गिरफ्तार होते देखकर अगर मैं भाग खड़ा हुआ तो मैंने निहायत अक़्लमंदीका काम किया था। इसपर उन्हें बिगड़ना नहीं चाहिए और खुश होना चाहिये कि मैं नहीं तो कम से कम मेरा साथी तो इतना होशियार है कि पुलिस वालोंसे बाज़ी मार ले गया। फिर भी इस बारीकी को उन्हें समझा कर अपनी सफ़ाई देनेके बदले खुशामदसे उन्हें खुश करनेकी ठानी। और खुशामद भी कैसी! खाली ज़बानी यानी सूखी साखी नहीं बल्कि अपनी सेवाकी तरावटसे एक दम तर। अब अगर अपनी बेवक़ूफ़ीसे उन्होंने सारा 'प्रोग्राम' बिगाड़ दिया तो मेरा क्या क़सूर?

उन्हें गांवमें आए हुए सप्ताहसे ज़्यादा हो चुका था और यह भी लोगोंकी ज़बानी मुझे मालूम हो गया था कि उनका लखनऊ जाना पूरे तौरसे सफल गया। यानी वहां जा कर उन्होंने अपना ऐसा इलाज कराया कि अब वह बिल्कुल जवान हो गए हैं। सरमें एक बाल भी सफ़ेद नहीं है और उनके गिरे हुए सब दांत भी उग आए हैं। इस अनोखी कायापलट पर गांव वालोंका शौक़ कुछ ऐसा भड़का हुआ था कि बच्चे तक दिनमें उन्हें दस-दस बार देखने आते थे। मगर उन्होंने अबतक उनके सामने पहलेकी बेवक़ूफ़ी नहीं की। उन्होंने आते ही मेरी खोज भी की। मगर उन्हें पास फटकनेका औसर नहीं दिया। क्योंकि गुस्से आदमीमें सींग वाले जानवरसे

भी बत्तर हो जाता है। उससे जितनी ही दूर रहे उतना ही अच्छा। वश चलता तो मैं उनका जन्म भर भी मुंह नहीं देखता। मगर क्या बताऊं, इस लुकाछिपीसे मेरी तबियत उक्ता गई। आखिर एक दिन सुबह तड़के ही अपने घोंसलेसे निकल पड़ा। और फूंक-फूंक कर क़दम रखता हुआ लम्बरदार साहबके मकान पर पहुंचा।

बाहर एक दम सन्नाटा था। बाहरी खण्डके सदर दरवाज़ेके भीतर जहां टारी, भुसैला चौपाल वग़ैरह सब कुछ है, अपने ऊपर बहुत कुछ जब्त और सब्र करके घुस गया। संयोगसे वहां उस वक्त हरवाहा चरवाहा कोई भी न था। चौपालमें लम्बरदार साहब भी न थे। मगर बहुत ताक-झांक करने पर हज़रत भुसैलेके एक कोनेमें छिपे बैठे अपने सर और मुंह पर कोई दवा छोप-छोप कर बान्धते हुए दिखाई पड़े। मेरे होश उड़ गये कि यकायक उनका सर और मुंह कैसे सड़ गया। अभी कल तक उनकी बाबत कोई बुरी खबर सुननेमें नहीं आई थी। एक ही रातमें इनकी खोपड़ी पर इतनी बड़ी आफ़त? खैर बीमारीका कोई ठीक नहीं है। मसल मशहूर है कि जब आती है सब हाथीकी तरह और जाती है चींटीकी तरह।

मगर ऐसा भयङ्कर रोग और ऐसी लापरवाही कि दवा करें दिहाती और वह भी खुद ही? मैं समझ गया कि यह सड़न खाली इनकी खोपड़ीके ऊपर ही नहीं बल्कि उसके भीतर पहुंच कर उनकी समझ और अक्ल पर भी दौड़ गई है। यहां एक से एक वैद्य हकीम और डाक्टरके होते हुए भला कौन ऐसा अपनी जानका दुश्मन होगा जो इस बुरी दशामें घास फूसकी लेग पर भरोसा करेगा? इस वक्त किसी सच्चे हितैषीका क्या कर्तव्य है फ़ौरन मेरे दिमाग़में खटका और उल्टे पैर मैं लौट पड़ा। वह उस वक्त

अपनी पट्टी बान्धनेमें इतने बझे हुए थे कि मुझे आंख उठा कर देख भी न सके। उनके पास कुछ पूछ-ताछ करना बेकार था। वह हित मित्र ही क्या जो पूछ कर काम करे? मसल ही है 'नेकी और पूछ पूछ'।

वैद्य, हकीम और डाक्टरोंने यह अजीब रिवाज़ निकाल रखा है कि जब रहेंगे तब शहर ही में गांवमें नहीं। गोया शहरवालों ही को तो अपनी जान प्यारी होती है और किसी को नहीं। शहर कम्बख्त हमारे गांवसे पूरे ढाई कोस पर था। फिर भी इस दूरीका बिना कुछ ख्याल किये मैं शहरको सरपट दौड़ा। क्योंकि सच तो यह है कि मेरे लिये अपनी कारगुज़ारी दिखानेका इससे बढ़ कर दूसरा मौक़ा नहीं हो सकता था। आमके आम और गुठलीके दामकी कहावत इसपर न्योछावर थी। खुशामदकी खुशामद फिर भी तारीफ़ यह कि करनेको खुशामद भी नहीं। बल्कि अच्छा खासा परोपकार। पत्थरका हृदय भी मेरे इस परोपकार पर बिना पिघले हुए रह नहीं सकता था। लम्बरदार साहबको जन्म भरके लिये अपना गुलाम बना लेनेके लिये तुरखा था। अगर नेकी समझनेकी ईश्वरने उन्हें कुछ अक्ल दी होती तब।

अब देखिये तमाशा। यहां तो बीमारकी जान पर बनी थी और वहां डाक्टरोंके मिज़ाज ही नहीं मिलते थे। जिसे देखिये वही गांवके नामसे कानों पर हाथ धरने लगा। बड़ी मुश्किलोंसे एक साहब राज़ी हुए। मगर उन्होंने फ़ीसका यकायक ऐसा अड़ंगा लगा दिया कि मेरी हक्की-बक्की बन्द हो गई इसका मैंने अबतक कुछ ख्याल ही नहीं किया था। इतना करने-धरनेके बाद इस ज़रा सी बातके लिये अपनी मिहनत पर अब एक दम पानी फेर देना भला कैसे गवारा हो सकता था? इसलिये मैंने बेधड़क कह दिया—"अजी

जनाब आप यह क्या फ़रमाते हैं? हमारे लम्बरदार साहब कुछ ऐसे-वैसे नहीं हैं। देखने ही में ज़रा घोंघा हैं। इसीलिये घोंघाराम कहलाते हैं। मगर हैं बड़े पक्के असामी। हज़ारों बिगहेके ज़मींदार हैं। भला वह आपके रुपये दो रुपयेसे मुंह मोड़ने वाले हैं—"

डाक्टर साहब बीच ही में बोल उठे—"नहीं बाबा दू रुपया नहीं होने शकेगा। यह शहरका बात नहीं गांवका बात है। जितना देरीमें हम जायेगा आयेगा उतनामें तो पचास जगह जाने शकता है।"

"मगर जब पचास जगहोंसे बुलावा हो तब तो।"

"तो तुम क्या समझता है। हमारा इतना बुलावा नहीं होता है?"

"कौन कहता है नहीं? साल दो सालमें ज़रूर हो जाता होगा।" लीजिये उसने बिना कुछ कहे-सुने मुझे अपने घरसे एक दम बाहर निकलवा दिया। भला यह कौन सी भलमनसाहत थी?

(२)

कई जगह भटकनेके बाद आखिर पन्द्रह रुपये पर किसी तरह एक डाक्टरको तय किया। जल्दीके मारे उन्हें सूट बूट तक पहनने नहीं दिया। धोती कुर्ता में ही घसीट लाया और तांगेवालेको खूब भारी इनाम दिलवानेका वादा करके घन्टे भरके भीतर ही उन्हें लाकर लम्बरदार साहबके दरवाज़ेपर पहुंचा दिया। एक नये आदमीका इसतरह शानसे तांगे पर चढ़ कर आना देख कर गांव वाले दौड़ पड़े। मैं पहुंचते ही सभीसे पूछने लगा—"कहो भाई अब लम्बरदार साहबका क्या हाल है।"

मगर हमारे सवालके जवाब देनेके बदले सभी डाक्टर साहबको घूर-घूर कर आपसमें कहने लगे।

"हम जान गएन वही होंय।"

"हां हां दुलहाके सार जिनके अवाइ रही। लम्बरदार कहत नाही रहे कि आजे काल्हमें अवइया हैं। जहां आए तहां बात चीत पक्की होय जाई।"

"मुल अब्बेरो काहे सार बनावत हो। बियहवा होय जाग दो तौ कहतौ नीक लागे।"

"कहौ हो यही आपन बहिनसे लम्बरदारके बियाह करइया हैं।"

"तब आये काहेके लिये देखत नाहीं हो?"

"तब तो भाइ हमरो अरज कह देयो। हमरो घर बस जाए।"

"घबड़ात काहे हो। इनके अइसे कृपा बनी रही तो गांवमें कौनो रंडुआके घर सून न रहे पाई।"

अब समझमें आया कि लम्बरदार साहबको जवान बननेकी क्यों इतनी फ़िक्र थी।

यह बात-चीत मेरे लिये कुछ ऐसी अनोखी और ताज्जुबमें डालने वाली थी कि इसमें पड़ कर मैं भूल गया कि अब क्या करना चाहिये।

दिहाती तो दिहाती, दिल्लगी करने वाली रिश्तेदारी का जहां ज़रा सहारा मिल जाए तहां फिर इसका क्या पूछना? एकदम खोपड़ी पर सवार हो जांए। इसलिये यह लोग सुना सुना कर खाली आपसमें बात ही करके नहीं रह गये बल्कि उनमेंसे एक गंवार आगे बढ़ कर डाक्टर साहबको टोक भी बैठा—

"राम! राम! हो दुलहाके सार। तांगा पर काहे आयो? तुम्हा तो डोलीके भीतर आवैके चाही। यह बिटिया अस मुंह भला कौने दिन कामे आई?"

मगर डाक्टरकी अक्लकी बलिहारी कि बिगड़नेको किसपर और

बिगड़ उठे किस पर। यह मेरी सजगता थी कि मैंने उस वक्त उनकी बात का कुछ ख्याल नहीं किया। वर्ना कहीं मुझे भी ताव आ जाता तो मार-पीट हो जानेमें क्या कसर थी? खैर उनकी घुड़कीसे मुझे अपना भूला हुआ काम याद आ गया और मैं उन्हें साथ लेकर द्वारके भीतर घुस गया। अब जो लोगोंको पता चला कि यह लम्बरदारके भावी साले नहीं बल्कि डाक्टर हैं तो बोलियां मारनेवालोंकी नानी मरी। और उन लोगोंको वहांसे दुम दबाकर भागते ही बना। हां जो अबतक चुप थे वे ही कौतुक वश अलबत्ता साथ हो लिये।

लम्बरदार साहब मुसैलेके एक कोनेमें उठगनी लगा कर उकड़ूं बैठे खर्राटे भर रहे थे। गर्दनके ऊपर उनके तमाम सर और मुंह पर पट्टियां बन्धी हुई थी। सिर्फ आंख और नाक खुली हुई थी। यह देखते ही गांव वाले चिल्ला उठे—"हाय! हाय! यू का भवा?"

लम्बरदार साहब चौंक पड़े।

गुस्सा न रहा गया। मैंने तानेसे कहा—"तुमलोग रोज़के आनेवाले और अब पूछने चले हो कि क्या हुआ? देखते नहीं कि गर्दन तक खोपड़ी एकदम सड़ गई है। तुम लोगोंमें किसीसे भी यह न हुआ कि इस बीमारीमें रोक-थाम करने की फ़िक्र करते। बस तुम लोग सुख ही के साथी हो। न जाने यह किस क़िस्मका कोढ़ है कि रात ही भर में इसने सारी खोपड़ी सड़ा डाली। अगर यही हाल रहा तो ईश्वर जाने आगे कौन सा रूप धरे। हाय! हाय! खाली देख-देख रह जाते हैं बेचारे बोल तक नहीं पाते। बहुरी हुई जवानीमें यह दशा? अफ़सोस!

सबकी आंखोंमें आंसू भर आए। हालत ही ऐसी थी। किसीके

मुंहसे बोल नहीं फूटा। आखिर मेरी ही अक़्लने काम किया और मैंने ही डाक्टर साहबसे कहा—

"डाक्टर साहब अब हमारे लम्बरदार साहबकी जान आप ही के हाथमें है। आप ही अपनी सकत भर कोशिश करें तभी यह बच सकते हैं। ईश्वरके लिये सबसे पहिले इस सड़नको रोकिये।"

यह अनोखी बीमारी देख कर डाक्टर साहबकी खुद ही अक़्ल दंग थी। मगर खैर मेरे सुझाने पर जल्दीसे बोल उठे—"सड़न रोकनेकी तो एक ही तरकीब है कि सड़े हुए अंगको काट कर फेंक दे।"

"तब देर क्यों करते हैं? वही कीजिये। अभी खैरियत है कि यह रोग गर्दनके ऊपर ही है। जहां नीचे और बढ़ा तहां कुछ करते न ब-ब-बन प-प-पड़ेगा।"

अब तो मेरे भी आंसू न रुके और गला रुंध गया।

मगर इतना सुनते ही लम्बरदार साहब बौखला कर उठ खड़े हुए और दोनों हाथोंसे अपने मुंह पर की पट्टी हटा कर चिल्लाए—"हां-हां-खबरदार! हमार मूड़ नहीं सड़ा है। हम खेजाब लगाए हन।"

अब आगे सुनना मैंने मुनासिब नहीं समझा। एक ही छलांगमें भुसैलेसे बाहर निकल कर बग़लकी घारीमें घुस गया।

(३)

ईश्वर जाने हमारे लम्बरदार डाक्टर साहब और तांगेवाले से किस तरह निबटे। मगर यह अलबत्ता मालूम है कि मुझे ढुंढवानेमें उन्होंने कोई कसर उठा नहीं रखी। यहांतक कि वह खुद डन्डा लिये मेरे नामको हजारों गालियों की पङ्क्तियोंसे विभूषित करते हुए मेरी खोजमें दिन भर

मारे-मारे फिरे। इस बेवकूफीका क्या इलाज? अगर उन्हें अक़्ल ज़रा भी छू गई होती तो इस वक्त उन्हें पागल कुत्ता बननेकी कोई ज़रूरत न थी। चुपचाप अपने किये पर पछताते और मेरी नेकनीयती पर दिल ही दिल शाबाशी देते। तब जिन लोगोंने सुना था खाली वही खिज़ाब लगाने का हाल जान कर रह जाते। उनकी नकली जवानीका इस तरह सारे गांव में भण्डा तो न फूटता। खासकर ऐसे नाज़ुक वक्त में जब उनकी शादीकी बात चीत जारी थी और उनके भावी साले साहब उन्हें देखनेके लिये आने-वाले थे। उन्हें खिज़ाब ही लगाना था तो ज़रा टके खर्च करके नए ढंगका लगाते। इधर एक फुरहरी लगाई उधर बाल स्याह हुआ। किसीको पता भी न चले की कब लगा और कब उसने अपना असर किया। यह मेंहदी की तरह छोपकर घन्टों पट्टीसे बान्धे रहनेवाला खिज़ाब आज कल्हके ज़मानेमें मुझे क्या हर अक़्लमन्दको धोखा दे सकता है। इसके लिये मुझ पर बिगड़ना खुद अपनी कम अक़्लीका ढिंढोरा पीटना था। न अपनी शक्ल धोखेवाली बनाते और न कोई उसपर धोखा खाता। उन्हें इस तरह किसीको धोखा देनेका क्या हक़ हासिल था? क़ानून भी इस मामलेमें उनका हर्गिज़ साथ नहीं दे सकता। बल्कि उन्हींको दोषी ठहराता है। मगर वही मसल है कि 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे।' अपनी शक़्लकी हालत तो भूल गए और उल्टे डण्डा ले कर मेरे पीछे पड़ गए। भई वाह!

उछले-कूदे, बमके, बिगड़े, मगर सब बेकार। क्योंकि मैं ऐसी जगह था जहां उनकी अक़्लकी पहुंच सपनेमें भी नहीं हो सकती थी। इसीलिये न मैं अपने घर पर था, न खेतमें, न गांवमें कहीं इधर-उधर, न किसी आंगन

में, न दालान, न किसी कोठरीमें था। तब था तो कहां था? एक अनाज रखनेवाली डेहरीके भीतर।

जब मैं लम्बरदार साहबकी घारीमें घुसा तब उरी वक्त समझ गया कि अब यहांसे निकलना ठीक नहीं है। गांवके मकानोंमें डेहरियोंकी भरमार होती ही है। और लम्बरदार साहबके यहां जिनके हज़ारों मन गल्ला होता है इनकी कोई गिनती नहीं है। घारी भुसैला तकमें डेहरियां ही डेहरियां दिखाई पड़ती हैं। उस घारीमें भी एक डेहरी थी जहां मैं था। चट उराके ऊपर उचक गया। ढक्कन हटा कर देखा तो ईश्वरकी कृपासे खाली मिली। बस रामका नाम लेकर उरीके भीतर लटक गया।

काल कोठरीका अनुभव बहुतोंको हुआ होगा। मगर डेहरीकी सांसत मेरी ही तक़दीरमें लिखी थी। दावेसे कहता हूं कि उराके आगे काल कोठरी भी बैकुण्ठ है। खड़े-खड़े सारे बदनकी हड्डियां जकड़ गईं। उसपर दिन भर की भूख और प्यासने और चूर-चूर कर डाला। क्या बताऊँ हर सांसमें बस दम निकल रहा था। ईश्वर इतनी जल्दी-जल्दी याद आ रहे थे कि राजा इन्द्र भी घबड़ा गये होंगे कि कहीं इसकी भक्ति पर मेरा इन्द्रासन न न्योछावर हो जाए। मर-मर किसी तरह शाम हुई। फिर धीरे-धीरे अन्धियारी छाई। इसीका बड़ी बेचैनीसे इन्तज़ार कर रहा था। मगर अररर! उस फांसीके कूंएसे अब जो निकलनेकी कोशिश की तो जाना कि निकलना मुश्किल ही नहीं बहुत मुश्किल है। एक तो हाथ पैर अकड़े हुए—कहीं पैर टेकनेका सहारा नहीं। उसपर मुसीबत यह—सिर्फ़ ऊपर बीचमें किसी तरह धड़ निकल जाने भर का छेद। मेरी खोपड़ीमें तो ईश्वरने आंखें दी नहीं थीं कि उस छेदका ठीक-ठीक निशाना ताक कर उछलता।

अगर निशाना भी ठीक बैठ जाता तो भी मैं बन्दर नहीं था कि ऊपरकी ज़रा सी पकड़के सहारे अपने पौने दो मनके शरीरको सफ़ाईसे बाहर कर ले जाता। बड़ी मुश्किलमें जान हो गई। ईश्वरकी भक्तिने और ज़ोर पकड़ा। कुछ इन्द्रासनके लालचमें नहीं बल्कि उस क़ब्रसे किसी तरह निकल जानेके लिये। मगर वाहरे! ईश्वर! उनसे इतनी भी बात सुनी नहीं गई। ग़रज़ पर कोई सुनता है कि वही सुनते!

(४)

आफ़त पर आफ़त। अभी डेहरीसे निकलनेकी तदबीर सोच ही रहा था कि हातेके बाहर लम्बरदार साहब गला फाड़ कर चिल्लाने लगे।—"अरे! मैकुआ रे! अरे! ओ मैकुआ! हाली से टोकरी लै लै राम्भ चलो। खेर पर से चनाकी गाड़ी आए गई।"

इसके बाद हातेके भीतर दौड़-धूप की आवाज़ आई। और उसके बाद कुछ न पूछिये। एक बेवकूफ़ उचक कर उसी डेहरीके सर पर बैठ गया जिसमें मैं दबका हुआ था। और टोकरी ढोनेवालोंसे चना-भरी टोकरी ले-ले कर अंधाधुन्द मेरी खोपड़ी पर उड़ेलने लगा। ऐसा अन्धेर? इसी को कहते हैं 'सर पर होरहा भूनना।' कम्बख़्तने साँस तक लेना दूभर कर दिया। ऐसा पाजीपनका मैं कभी ख़याल भी नहीं कर सकता था। ऊपर खोपड़ी छलनी-छलनी हो रही थी। और नीचेसे अनाजमें मेरा बदन कसता चला जाता था। और दम घुटनेका हाल तो बस कुछ न पूछिये। आख़िर आदमी ही तो कहां तक सब्र करता? गुस्सेमें उबल उठा। और भीतर ही से कड़क कर बोला—"बस कर पाजी नहीं बिना मारे छोड़ूँगा नहीं।"

अन्धेरेमें डेहरीके भीतरसे यह कड़ाके की डपट निकलते ही, ...

वाला आदमी इतने ज़ोरोंसे चौंका कि धड़ामसे नीचे गिरा और बाप-बाप करता हुआ भागा।

"का भवा का भवा ?"—कहते हुए लम्बरदार साहब दौड़े और उनके साथ दो-चार आदमी और लपके। तुरन्त ही 'लालटेन लाओ लाठी लाओ' का शोर मच उठा। हाय! हाय! यह तो उल्टे लेनेके देने पड़ गए। रही-सही जान भी निकल गई। लालटेनकी रोशनी धारीके छप्पर पर चमकी। और कोई यमदूत सचमुच देहरी पर चढ़ता हुआ जान पड़ा। सारे बदनका खून जम गया। मैं चूहेदानीके चूहे की तरह देहरीकी दीवारोंमें इधर-उधर चिपकने लगा। वैसे ही ईश्वर जाने ऊपर चढ़ने वाले के बेतुकेपनसे या मेरे इधर उधर चिपकनेके झाँकेमें देहरी एक तरफ़ यकायक झुक गई। फिर अररर धड़ाम से तोपकी तरह आवाज़ हुई। उसके बाद अन्धकार कुप और बाप दादाकी चिल्लाहट गूंज उठी। देहरी क्या गिरी मानो वहां पर जमा हुए लोगोंके लिये बिहारका एकदम भूचाल आ गया। किसीका सर फटा, किसीका धड़ पिसा, किसीकी टांग दबी, किसीका हाथ टूटा ग़रज़ किसीका भी अंग साबित नहीं बचा। यहांतक कि लम्बरदार साहब भी छटपटाते हुए पचम सुरमें कराह रहे थे। और मैं जिस तरहसे अंडेसे बच्चा निकलता है ठीक उसी तरह फूटी हुई देहरीसे झाँकेमें निकल कर सभोंके ऊपर लोट लगाने लगा। और लुढ़कता हुआ कितनी दूर चला गया यह मुझे खुद ही पता नहीं। इतना अलबत्ता याद है कि मेरी पीठमें कोई चीज़ गड़ी उसे झट उठा कर लुढ़कता हुआ और आगे बढ़ गया और फिर रुकनेका नाम ही नहीं लिया। अब ज़रा उन लोगोंकी बेवकूफ़ी सुनिये। जिन-जिनके ऊपर मैं लुढ़का था उन लोगोंमें आपस ही

में एक दूसरे को समझा कि इसीने मुझे मारा है। चोटकी झुंझलाहट में किसी से भी यह अपमान सहा न जा सका ज़मीन पर पड़े ही पड़े किट-किटा कर सब एक दूसरे से गुथ गए और लगे घूंसे थप्पड़ से अपनी-अपनी कसर निकालने।

(५)

जी में आया कि फ़ौरन बम्बई का टिकट कटा लूं। मौक़ा बड़ा अच्छा था। ऐसे ही मौक़ा पर परदेश जानेका आनन्द है। मगर जब चार दिनों तक लम्बरदार साहब अपनी कमर मचक जानेके कारण घरसे एक दम नहीं निकले और गांवमें यह भी मशहूर हो गया कि लम्बरदार साहबकी घरी भूतोंका अड्डा है तब उनके ऐसे संकटमें मेरे लिये गांव छोड़ कर कहीं बाहर जाना भलमनसाहत न थी। मेरे रुकनेकी एक खास वजह और पड़ गई। वह थी लम्बरदार साहबके नक़ली दांतोंका सेट, जो डेहरी गिरते वक्त, उनके मुंहसे निकल कर मेरी पीठमें गड़ा था और उसे मैंने अनजाने उठा लिया था। न उठाना तो और भी बुरा था। किसी न किसीके हाथमें पड़ता ही और तब उनकी बहुरी जवानीकी पोल बिना खुले नहीं रह सकती थी। मैं समझ गया कि इन दिनों उनके घरसे न निकलनेका कारण चोट से बढ़ कर यही दांतोंका सेट है जो इस वक्त, मेरे पास था। इससे बिना उनके पास पहुंचाये मैं उनका शुभचिन्तक हो कर भला कैसे बाहर जा सकता था?

यह दांतोंका सेट उनके लिये इन दिनों कितना ज़रूरी था खासकर जब उन्हें देखने के लिये उनके भावी साले साहब तशरीफ़ लाने वाले थे और इसी पर उनकी शादी निर्भर थी, वही समझ सकते थे या फिर मैं जिसने

अब भी उनकी सेवा से मुंह नहीं मोड़ा। वह लाख ख़फ़ा थे तो क्या! मगर मैं ऐसा बेमुरौअत न था कि उनके घर बसाने ही की नहीं बल्कि उनके घर से बाहर निकलनेकी भी कुंजी अपने पास लिये उन्हें कफ़समें सड़नेके लिये छोड़ जाऊँ। मुझे विश्वास था कि यह 'सेट' अगर दुश्मनके हाथोंसे भी उस वक़्त उन्हें मिल जाए तो वह अपनी सारी दुश्मनी भूल कर उन हाथोंको चूम लेंगे और सर आखोंसे लगा लेंगे।

मगर यह समस्या हल नहीं होती थी कि उनके दांतोंको उनके पास कैसे पहुंचाऊँ। खुद लेकर अभी उनके सामने जाना अक़्लमन्दी का काम न था। गांव वालोंमें किसीके हाथ भेजनेमें भण्डा फूटनेका डर था। और देर करने से सब काम ही बिगड़ जाता था। क्योंकि "का वर्षा जब कृषी सुखाने"। जब उनके मेहमान आ ही जायेंगे तब इसका भला क्या असर रह जायेगा? इसलिये उनके दांतको उनके पास पहुंचाने की मुझे खुद ही जल्दी पड़ी थी।

चौथे दिन संयोगसे एक ऐसे आदमीसे मुठभेड़ होगई जो किसी शक्कर के कारखानेमें गन्ना देने का ठेका लिये हुए था और गांव-गांव घूम कर गन्ना बोनेके लिये लगान पर जमीन लेता था। इसी इरादे से यहां भी आया था। मुझे सूझ गई कि इससे मेरा काम बड़े मज़ेसे निकल सकता है। क्योंकि वह यहांके लिये बिल्कुल अपरिचित था। बस उसे उसके काममें पूरी मदद देनेका वादा करके मैंने सलाह दी कि—"काश्तकारोंके मारा जाना बेकार है। आप सीधे हमारे ज़मींदार चौधारामसे मिलिये—" वह बीच ही में बात काट कर कहने लगा—"चाहता तो मैं भी यही था। मगर वह बीमारीके कारण घरसे निकलते तक नहीं हैं।"

"हां बीमार तो वह ज़रूर हैं। मगर बात कुछ ऐसी है जो वह इन दिनों घर से नहीं निकलते। मालूम होता है उन्हें मालूम न हुआ होगा कि आप काश्तकारीके लिये आए हैं।"

"मुमकिन है यही बात हो। क्योंकि मैंने अपना इरादा अभी साफ़-साफ़ कहलाया नहीं है।"

"अच्छा मेरे कहनेसे ज़रा ऐसा भी करके देख लीजिये। इसीके साथ इतना ज़रूर कहला दीजियेगा कि मुझे यहां कोई जानता तक नहीं है। मैं बिल्कुल ही नया आदमी हूँ।"

"अच्छी बात है। ऐसा ही करूंगा। मगर जान-पहचानवालोंसे उन्हें इतना परहेज़ क्यों है?"

"यह एक भेदकी बात है। मुझसे भी उन्होंने छिपाना चाहा था। मगर वह कौन सी बात है जो भय्या अक़िल बहादुर से छिपी रह सके। मैंने सब पता लगा ही लिया। बात यह है कि लम्बरदार साहबने जवान बन कर अपनी शादी चुपके-चुपके एक जगह तय की है। मगर लड़कीके भाईने इन्हें अबतक देखा नहीं है। उसे किसी तरह खबर मिल गई कि लम्बरदार साहब बहुत बूढ़े हैं। बस उसने कहला भेजा है कि जब तक मैं उन्हें अपनी आंखोंसे देख न लूंगा तब तक शादी की बात पक्की न समझी जाये। और इसीलिये वह आज ही कल्हमें यहां आने वाला भी है। मगर इस बीचमें लम्बरदार साहबकी जवानीकी सारी फूंक निकल गई। जब तक यह फूंक फिरसे न भरी जायेगी तब तक आप ही बताइये वह बेचारे घरसे कैसे निकल सकते हैं।"

"मगर यह जवानीकी फूंक क्या बला है मैं समझा नहीं।"

अब इस बातको कौन घन्टे भर तक समझाता ? इसलिये मैंने लम्बरदार साहबके दाँतोंका सेट उसके हाथमें देकर कहा—"बस इसीसे राव समझ जाइये।"

फिर भी वह बेवकूफ़ कुछ नहीं समझा। आखिर मुझे बताना पड़ा कि यही उनकी जवानीकी फंक है। इसके उनके मुंहसे निकल जानेके कारण वह मुंह छिपाये हुए हैं। ताकि उनकी नक़ली जवानीकी पोल गांव वालों पर खुलने न पाये। नहीं तो आने वाले मेहमानके आगे उनकी बड़ी भद हो जायेगी। इसलिये इस वक़्त गेरी भी पहुंच उनके पास नहीं हो सकती। अगर आप कृपा करके इसे उन्हें चुपके से यह कह कर दे दें कि इसे भय्या अक़िल बहादुरने एक कुत्तेके मुंहसे छीना है जो इसे हड्डी समझ कर लिये जाता था। और इसीको आपके पास पहुंचानेके लिये मुझे खास तौरसे मेरे घरसे बुलाया है। इसे पा कर वह बेचारे मुंह दिखाने क़ाबिल हो जायेंगे। उनका सारा काम बन जायेगा। और वह मुझसे नहीं बल्कि आपसे भी इतने खुश हो जायेंगे कि बिना नज़राना लिये ही आपको ज़मीन दे देंगे। विश्वास मानिये।"

इसके बाद लम्बरदार साहबसे कहनेके लिये बढ़िया खिज़ाब मिलनेका ठिकाना भी उसे बता दिया।

मगर उस ठेकेदारका पाजीपन देखिये कि अब वह उनके पास आनेमें नखरे करने लगा। कहने लगा कि—"आपही इसको उन्हें दे दीजियेगा। मुझे उनसे मिलनेकी ज़रूरत नहीं है।"

उसकी ज़रूरत चूल्हे भाड़में गई। मगर मुझे तो अपने लम्बरदारको खुश करना था। मैं भला इज़रतको आसानीसे कैसे छोड़ देता ? आखिर

उराकी आनाकानी भय्या अक़िल बहादुरके आगे एक न चली। और उसे लम्बरदार साहबके पारा दाँतोंका सेट झखमारकर ले जाना पड़ा।

अब जाकर दिलको चैन आया और अपनी अक़लकी तारीफ़ करता हुआ इतमीनानकी सांस ली।

(६)

कहां लम्बरदार साहबकी चार दिनोंसे किसीने परछाहीं तक नहीं देखी थी कहाँ उनको कुछ देर बाद ही लठिया टेकते हुए मगर तेज़ीसे मैं अपने घरकी ओर आते देखकर फूला न समया। समझ गया कि आ रहे हैं मुझे गले लगाने। लपककर आगे मिला—

"लम्बरदार काका राम राम!"

"राउ हमार मूड़ काट लियो। तोहार बोटी बोटी मांस काटके कुकरनके न खवायन तो हम लम्बरदार नाहीं....."

अररर! यह क्या ग़ज़ब होगया? मैं घबड़ा कर बोला—

"अरे! मूड़ कहां कटा? गर्दन पर तो आपका सर मौजूद है। ज़रा टटोलकर पहिले देख तो लीजिये।"

मैं बड़े चक्करमें था कि यकायक इनका दिमाग़ कैसे खराब होगया। मुहमें दांत भी लगे हुए थे। फिर यह अगियाबैताल क्यों बन गए। मगर ऐसे आंगलूससे बहस करना बेकार था। मैं दनसे अपने घरमें घुसा। और जल्दीमें कुछ न सूझा तो ड्योढ़ी ही में चारपाई पर से उचककर बड़ेर पकड़ ली और उसके सहारे छतसे चिपक गया।

तमाम घर ढूंढ़ डाला गया। मगर मेरी गर्द तक न मिली फिर भी

लम्बरदार साहब वहांसे न टले बल्कि ड्योढ़ीमें चारपाई पर यह कहते हुए बैठ गये कि—

"सार कहूं छुकान होई। कब्बो तो निकरी।"

यह बड़ी मुसीबत हुई। वह तो मजे में चारपाई पर बैठे गालियां दे रहे थे और यहां कड़ीमें चिपके-चिपके दम निकला जा रहा था। मैं कोई छिपकली तो था नहीं। कहां तक चिपका रहता? आखिर पैर लम्बरदार साहबकी खोपड़ी पर लटक ही गये, जिससे उनकी लम्बी-चौड़ी पगड़ी उनके चेहरे पर झांसीके कनटोपकी तरह धंस गई। और मैं इनसे फान्द गया।

मुझे उनकी गाली गलौजसे पता चल गया कि यह सारी आफ़त उसी कम्बख्त ठेकेदारकी ढाई हुई है जिसके साथ मैंने इतनी नेकी की थी। इसीसे लोग कहते हैं कि नेकीका बदला हमेशा बदी है। तभी तो लम्बरदार साहबके पास जाकर वह पाजी गन्नेका ठेकेदार रहनेके बदले एक दम उनकी शादीका ठेकेदार बन गया। यानी उसकी ही बहिनसे लम्बरदारकी शादीकी बात-चीत थी। अब इस बदमाशीका क्या इलाज? और लम्बरदार साहबकी अक़्लको क्या कहूं कि वह हर्फ़ बहर्फ़ इसे सच मान गए। रही शादी उखड़नेकी बात, उनकी तक़दीरमें यही लिखा था मेरा क्या क़सूर? जब देखने-सुननेका झंझट खड़ा हो गया तभी उन्हें समझ लेना चाहिये कि मामला खटाईमें पड़ गया।

ख़ैर उस वक्त तो मैं अपनी जान पर खेल कर ऐसी सफ़ाईसे निकल भागा कि वह देख भी न सके। मगर जब उनकी अक़्लका यही हाल है तब बकरीकी मां कबतक ख़ैर मनावे यही मुश्किल है।

भइया अकिल बहादुर बम्बईमें

(१)

"टिकट ! टिकट ! टिकट !"

"खर्र—खर्र—खर्र"—नाक बोल रही थी।

"ए ! उठो ! टिकट दिखाओ ! उठो जी।"

"ऊँ—हूँ—"—अंगड़ाई लेने लगा।

"अरे ! यह क्या ?" ·····हां हां उफ़ ओ ! आंख फूट गई।" "·····अररर ! मेरी पगड़ी गिर गई।"·····"धत् तेरे की ! यह कैसा आदमी है ?"—सिराहने पताने दोनों तरफ़ कांय-कांय शुरू हो गई।

अगर अंगड़ाई लेते वक्त, झोंकसे सेठजीकी पगड़ी उलट गई या टिकट मांगनेवाले की आंखोंमें उँगलियां घुस गईं तो मेरी टांग या उँगलियाँ

का क्या क़सूर ? कुछ वे बेचारी ऐनक तो लगाए न थीं कि देख लेती कि निशाने पर क्या है। मैं तो जनाब घरसे सीधे बम्बई जा रहा था ताकि लम्बरदार साहबको दिखा दूँ कि भइया अक़िल बहादुर किसीसे दबनेवाले नहीं हैं। दबे या डरे वह, जिस बेवक़ूफ़के अक़्ल न हो। यहां तो जहां उनकी नीयत ख़राब देखी और समझा कि वह मुझपर बिना कुछ न कुछ आफ़त ढाए माननेवाले नहीं हैं तहां चट बम्बईका टिकट कटा लिया। बस रह गए हज़रत अपनासा मुंह लेकर। सच पूछिये तो ऐसे ही वक़्त, दूर की सूझती भी है। फिर इतनी दूर तकका सफ़र करनेवाला कोई भलामानुस अगर सोतेमें इस बेतुकेपनसे जगाया जाए तो भला वह बिना हाथ पैर झटके कहीं उठ सकता है ? देख लीजिये कुत्ता भी उठता है तो कान फटफटाकर जिसमें सोया हुआ खून जग चालू हो जाए। उसपर जिस वक़्त मैं सोया था कम्पार्टमेन्ट बिल्कुल खाली था मगर यह विज्ञानकी बातें समझनेके लिये खोपड़ीमें डेढ़ सेरका भेजा चाहिये इसलिये मैंने किसीकी कांय-कांय पर कुछ ध्यान नहीं दिया। चुप-चाप बैठकर आंखें मलने लगा।

"टिकट निकालो जी।"

मैं कोई गंवार तो था नहीं जो रोब में आ जाता। कलकत्ता और लखनऊ तकका पानी पीये हुए था। मैंने भी झिड़की बताई—"टिकट! टिकट! टिकट! नाकमें दम कर दिया। आपने मुझे क्या समझ रखा है जनाब ? मैं कुछ ऐसा वैसा हूँ ? खूब आंखें खोलकर टिकट देखिये। काहे को आपका हौसला रह जाए ? लीजिये निकालता हूँ।"

मगर अररररर! टिकट निकालनेके लिये जो भन्नाकर जेबमें हाथ डाला तो पांचों उँगलियां उस पार एकदम बाहर निकल पड़ीं। ऐं! यह

क्या ? सारी पूंजी ही गायब ? कलेजा धकसे हो गया और आंखोंके सामने यकायक अन्धेरा छा गया।

फिर उस अन्धकारमें एक बड़ी ही सुरीली आवाज़ सुनाई पड़ने लगी।

"क्यों ? क्या जेब कट गई ? इसीलिये कहती थी कि तीसरे दर्जेमें न चलिये। उसपर अक़्लमन्दी तो देखिये कि मुझे ज़नानी गाड़ीमें अलग बिठा दिया। शक़ तो मुझे पहिले ही हुआ था कि कहीं आप सो न जाएँ। इसीलिये जब तबियत न मानी तब आकर देखा कि सचमुच आप खर्राटे भर रहे हैं। इस हालतमें भी जेब न कटती ? रक़मकी रक़म खोई और अपने दोनों टिकटोंसे हाथ धो बैठे। खैर ! यही बड़ी खैरियत समझिये कि कुछ रुपये मैं अलग अपने साथ लेती आई हूँ। नहीं तो परदेशमें आटे-दालका भाव मालूम होता।.....हाँ मिस्टर—(टिकट कलक्टरसे) Dont' worry my husband please. He is rather ill and upset, just make two tickets for us upto the terminus and let me know their charges". [कृपया मेरे पतिको परेशान न कीजिये। यह कुछ बीमार और परेशान हैं। बरा दो टिकट हम लोगोंके लिये बराबर तकफे बना दीजिये और उनके दाम बताइये।]

या ईश्वर यह कैसा स्वप्न ? कहां मैं अपनी सारी पूंजी और टिकट गायब हो जाने पर जहन्नुमकी हवा खाने लगा था। और कहां अब इन बाक्योंको सुनकर मैं घोर अचरजकी दुनियामें ढकेल दिया गया। क्योंकि क़सम खाकर कहता हूँ कि न तो मेरे कोई स्त्री थी, न मैं किसी स्त्री को साथ लेकर चला था और न मेरे सोनेके पहले इस डब्बेमें कोई स्त्री

थी। हर तरह मुझे स्वप्न ही स्वप्न जान पड़ा। मगर अब जो आँखें फाड़ कर बार-बार अच्छी तरह घूरा तो देखा कि सचमुच एक फैशनेबिल लेडी साहबा सामनेके बेंच पर बैठी हुई टिकट कलक्टरको दाम देकर मेरे और अपने लिये टिकट बनवा रही हैं।

(२)

बलासे मेरे कोई स्त्री न थी। मगर ईश्वरकी इस अपूर्व देन पर मेरे लिये ज़रा भी चूं करना अव्वल नम्बरका गदहाईपन था। खासकर ऐसे वक्त, जब जेब कट जानेसे मैं एकदम मुहताज हो गया। वहीं दम भर खड़े होने तकका भी सहारा न था। सबसे पहिले तो रेलवाले ही मुझे जेलखाने भिजवानेका इन्तज़ाम कर लेते तब कोई बात करते। मगर ईश्वर का क्या कहना है। बड़े लम्बे हाथ हैं। मुसीबतकी मुसीबत उबारी और साथ ही मेरे लिये चुनकर ऐसी तरहदार, लचकदार, फड़कदार, मसालेदार—कहांतक बखान करूँ कहते तो मुंहमें पानी भर आता है—उसपर फ़र फ़र अङ्गरेज़ी बोलनेवाली स्त्री छांटी है कि मुझे सात जन्ममें भी ऐसी नसीब नहीं हो सकती थी, हां नहीं हो सकती थी। मुझे तो अब यही धड़का लगा कि कहीं वह अपनी भूल समझकर मुझे दुत्कार न दे कि तुम मेरे पति नहीं हो। क्योंकि मैं समझ गया कि उसका असली पति बिल्कुल मेरी ही शक्लका है। उसीको ढूँढ़ती हुई यह गलत गाड़ीमें घुस आई और वह किसी दूसरी गाड़ीमें सोता ही रह गया या जल्दीमें गाड़ीमें न चढ़ सका या प्लेटफार्म ही पर मर गया। न मरा हो तो कमबख्त अब मर जाए। यही दुआ मेरी हर सांससे निकलने लगी। ताकि उसके लौटनेका कोई खटका न रहे।

मगर था वह पूरा उल्लू इसमें ज़रा भी शक नहीं है। क्योंकि रोज़ सुबह उठकर वह अपनी बीबीके जूतों पर पालिश करता था। उसके मोज़ों को साबुन से धोता था। चायदानी साफ़ करके चाय बनाता था। जब मैडम चाय पीने निकलती थीं तब उनके कमरेमें झाड़ू लगाता था। तभी तो उनके साथ रहकर मुझे भी यही सब करना पड़ा। मेरी अक़्लमन्दी भी इसीमें थी। भय्या अक़िल बहादुर ऐसे बेवकूफ़ न थे कि इन बातोंको सुधारनेकी फ़िक्र करके अपना भण्डा-फोड़ कर देते। जब असली पति इन कामों को शौक से करता था तब मुझ ऐसे नक़ली पतिको इनको करनेमें भला क्या उज्र हो सकता था?

उसकी सारी Duty (कर्तव्य) तो मैं ताड़ गया। अगर नहीं भांप सका तो यही कि वह बेवकूफ़ अपनी स्त्रीको प्यार किस तरह करता था। बल्कि मुझे तो अब यह शक होने लगा कि उसने अपनी ज़िन्दगी में कभी प्रेम-पाठ का पढ़ना सीखा ही न था। वर्ना इस मामलेमें मैडमके भाव मेरे प्रति इतने सूखे और सादे कदापि नहीं हो सकते थे। वह प्रेमालापके लिये ज़रूर मुझे कोई न कोई औसर देतीं। बिना उत्साहित किये हुए किसी स्त्रीको प्यार करनेका साहस करना—चाहे वह अपनी ही स्त्री क्यों न हो बड़ी भारी मूर्खता है। मार खा जानेका अन्देशा होता है और यहां तो कलई भी खुल जानेका डर था। इसलिये उस गदहे पतिको जो ऐसी चञ्चल मनमोहनी पाकर भी प्यार न कर सका और इसतरह मेरी राहमें कांटे बो दिये मैं दिल ही दिल कोसता था और कलेजा मसोसकर रह जाता था।

प्रेम पाठका नए सिरेसे आरम्भ करना और इस प्रकार जिसमें 'मैडम' को पता न चल सके कि यह कोई दूसरा व्यक्ति है, मेरे लिये कम से कम

बम्बईमें तो अरम्भव ही असम्भव जान पड़ा। क्योंकि कोई भलामानुस प्रेम करनेका उद्योग करे भी तो कहां? घरसे बाहर क़दम उठाओ तो घर घर, सर सर, घन घन, भों भों के मारे सीधा-सादा दिमाग़ औंधा हो जाए। मोटर पर निकलो तो क़दम-क़दम पर लड़ जानेकी हौलदिलीमें Hoart fail (हृदय धड़कन बन्द) हो जानेका डर और पैदल चलो तो आंख झपकी नहीं कि सीधे पहियेके नीचे। जान बच जाए तो दिशा-भ्रममें भटक-भटकर मरो। इस आफ़तमें बग़लमें 'मैडम' हों भी तो क्या? उस वक़्त राम नाम जपे कि प्रेमकी वर्णमाला पढ़े।

उसपर वहांके राहियोंका कुछ न पूछिये। वह स्वांग बनाकर निकलते हैं कि निगाह बिला अटके मानती नहीं। सर पर डेढ़ अंगुलसे लेकर डेढ़ हाथकी ऊँची टोपी। पगड़ीनुमा, खंजड़ीनुमा, किश्तीनुमा, गुम्बदनुमा, हांडीनुमा, टोकरीनुमा—कहाँ तक गिनाऊँ—तरह-तरह की। मैं तो एक ऊँची टोपीवालेको एक दूकानकी ओर लपकते हुए देखकर ज़रा बीच राहपर खड़ा हो गया कि देखूं यह ताड़कानन्द सर पर क़ुतुबमीनार उठाए घरबारके भीतर कैसे समाते हैं कि कुछ न पूछिये। यह मेरी फुर्ती और होशियारी थी कि खाली क़लाबाज़ी खाकर मैं एक मोटरसे बाल-बाल बच गया। मगर वहांके आंखवाले अन्धोंको क्या कहूं जिन्हें इतना न सुझाई पड़ा कि हम आदमीकी पीठ पर चल रहे हैं या ज़मीन पर। बड़ी ख़ैरियत हो गई कि मैं जल्दी ही उठ खड़ा हुआ। मगर—अजब हो गया! 'मैडम' का साथ छूट गया।

मेरा दिल धड़कने लगा। क्योंकि इस अन्धेर नगरीमें मेरे लिये अपने स्थान पर अपने आप अकेले पहुँच जाना बिलकुल ग़ैर मुमकिन था। ख़ैर

ईश्वरकी कृपासे मैडम आगे पचास गज़की दूरी पर एक आदमीके साथ जाती हुई दिखाई पड़ीं। मैं उनके पीछे बेतहाशा दौड़ा और दोनोंके बीच में घुसकर चलने लगा।

वह आदमी भड़ककर बोला—"What do you want? (क्या चाहते हो)?

मैंने भी अंग्रेज़ीमें कड़ककर कहा—'My wife' (मेरी स्त्री) और झट 'मैडम'का हाथ पकड़ लिया कि कहीं फिर न उनका साथ छूट जाय। वह मरदूद एक दम पतलूनसे बाहर हो गया।

जब तक किसीने मुझे पीछेसे पकड़कर खींच लिया। नहीं तो वहाँ भी अच्छी तरहसे मारा जाता।

अब जो अपने पकड़नेवालेकी तरफ़ घूमा तो देखा कि अररररर! यह तो मेरी ही मैडम मुझे पकड़े हुए हैं। धत् तेरे कि! उसकी मैडमको मैं My wife कह बैठा।

मगर इसमें मेरा क्या क़सूर? वह मेरी मैडमकी तरह क्यों फ़ैशन बनाकर चलीं? कुछ उनकी पीठ पर 'साइनबोर्ड' तो लगा ही न था कि वह मेरी नहीं उसकी हैं।

(३)

घरमें प्रेमका हाल और भी बदतर। न कहने क़ाबिल और न सहने क़ाबिल। क्यों? यहाँके मकानातकी खूबी और क्या कहूँ?

बने तो हैं इतने आलीशान कि महल भी शर्मा जाएँ। मगर सच पूछिये तो हैं क्या? कबूतरके दर्बे या भिड़के छत्ते। न बरामदा, न अरोठा, न आँगन, न सायबान, खाली कमरे ही कमरे और हर कमरेमें

पूरा एक खान्दान। खाना खाओ होटलमें और सिकुड़कर पड़ रहो बाल-बच्चे समेत अपने कमरेमें, मानो अपने हिसाब घरमें नहीं मुसाफ़िरखाने में हैं। फिर ऐसे मुसाफ़िरखानेमें जहां हमारे यहांके दो-चार गांवके बराबर लोग ठसे पड़े हों भला कौन भलामानुस प्रेम करनेकी बेहयाई कर सकता है?

अव्वल तो अपने कमरे तक पहुँचते २ आदमी इतना बेदम हो जाता है कि वह बेचारा प्रेम करने क़ाबिल नहीं रह जाता। क्यों कि "Lift" —(बिजलीकी सीढ़ी) पर जाओ तो प्राण नीचे ही रह जाएँ, खाली लोथ ऊपर पहुँचे। पहिले पहल जब मुझे इसपर चढ़नेकी मुसीबत पड़ी तो कलेजा धकसे हो गया और मैं चिल्लाकर दो पैरोंके बदले चारों हाथ पैर पर खड़ा हो गया। भूचालमें ज़रा सी पृथ्वी हिलती है तो होश गुम हो जाते हैं और यहां तो पूरी कोठरी धनसे एक दम आस्मान पर पहुँच जाती है। इस अन्धेरेमें भला किसका दिमाग सही रह सकता है? मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि मानो सशरीर यमराजके घर चले। मैंने उसी वक्त, कसम खाई कि अगर मेरे प्राण लौट आए तो फिर कभी जीते जी इसपर क़दम न रखूँगा।

सीढ़ियों पर चढ़ो तो कमरेमें पहुँचकर घन्टा भर तक कमर पकड़ कर हांफो। यों कोई ज़मीन पर दस कोस मुझे दौड़ा ले भइया अक़िल बहादुरके चेहरे पर झांई नहीं पड़ सकती। मगर चढ़ाई पर चढ़ना आदमियोंका नहीं पहाड़ी दांगनका काम है। दस-बीस सीढ़ियाँ होतीं तो खैर किसी तरह काबूमें कर लिया जा सकता था। मगर यहां तो यह हाल कि जिन्दी खतम हो जाए तो हो जाय मगर कम्बख्त सीढ़ियां

खतम न हों। उसपर मुसीबत यह कि 'मैडम' रहें दूसरे कमरेमें जिसमें मिस्टरको सिर्फ़ एकबार झाड़ू लगाने और बिस्तरा बिछानेके लिये जाने की इजाज़त हो।

क्योंकि हम लोग रहते थे मिस्टर और मिसेज़ के० एन० बुलबुलके नामसे चौमञ्जले पर। एक Flat—(कुछ कमरोंका खण्ड) किराये पर लेकर जिसमें एक सोनेका कमरा, एक बैठक, एक पायखाना, एक ग़ुसल-खाना और चाय बनानेके लिये थोड़ी सी जगहमें एक बिजलीका चूल्हा था। बैठक और सोनेके कमरेके बीचमें एक पतलीसी गैलरी थी जिसमें दोनों कमरोंसे खुलनेवाले चार खण्ड करके एक में पायखाना, दूसरे में ग़ुसलखाना तीसरेमें दोनों कमरोंमें आने-जानेका रास्ता और चौथेमें चूल्हा था। दोनों कमरोंकी दाहिनी ओर सीढ़ियों तक जानेवाली एक बड़ी लम्बी गैलरी और बाईं तरफ़ छजा था, बस। और उसपर यह अन्धेर कि किराया सवारी रुपये महावार।

सोने वाले कमरेमें पलंग पर मैडम सोती थीं। और बैठकमें रातको फ़र्श पर मिस्टर चित्त लेट जाते थे। क्योंकि मैडमके कमरेका बीचवाला दरवाज़ा बन्द रहता था। सिर्फ़ उन्हीके आने-जानेके लिये खुलता था या उस वक्त जब मुझे झाड़ू लेकर उसमें जाना पड़ता था। इससे प्रेमके मन्सूबों पर घरमें और झाड़ू फिर जाती थी। क्योंकि सच तो यह है कि घोड़े से जब गदहेका काम लिया जाए तो फिर वह एक लद्दू ही हो कर रह जाता है।

खैर मुझे इतना सन्तोष तो ज़रूर था कि सिर्फ़ काम ही के वक्त, दरवाज़ा बन्द करके खिदमतगारी करनी पड़ती थी। उसके बाद तो मझधा

अक़्लि बहादुर निहायत शानसे पतलूनकी जेबोंमें दोनों हाथ डाले साहब बहादुर बने रहते थे। और इसी ठाठसे मेडमके साथ कई फोटो भी खिंचवाये। मेरे लिये यह साहबी ठाठके कपड़े सिले सिलाए बम्बईमें पहुँचते ही खरीदे गए थे। क्योंकि मुझे बेसरोसामानके पाकर मैडम समझीं कि इसने अपने 'पैसे'की तरह अपना सूटकेस भी शायद खो दिया। इसका मैंने समर्थन भी बड़े ज़ोरोंसे सर हिलाकर कह दिया—"जी हाँ। अब याद पड़ा। मैं सोनेके लिये अपना सामान छोड़कर दूसरे डब्बेमें चला आया था, और उतरते वक़्त जल्दीमें उसका ख्याल न रहा।"-- क्यों न हो भइया अक्लि बहादुरकी सूझ वक़्त ही पर अपना जौहर दिखाती है।

लुंगी पहनकर मेडमके जूतों पर पालिश करते समय तो प्रेम भागा-भागा फिरता था। मगर जहाँ पतलून चढ़ाकर साहब बना तहाँ कम्बख्त न जाने कहाँ से आकर गर्दन पर सवार हो जाता था। यहाँतक कि चौथे दिन सारे शाम ही से इसका बुखार चढ़ने लगा। बारह बजे रातको जब विरह-व्यथासे प्राण डूबने-डूबने लगे तब मरता क्या न करता? सोचा कि मैडमके कमरेका बीचका दरवाज़ा बन्द है तो गैलरी, छज्जा, पाखाना, गुसलखाना किसी तरफ़का तो खुला होगा। इसलिये अगर मैं इस वक़्त, किसी तरह उसके कमरेमें जाकर कह दूँ कि छज्जे पर चार बड़े-बड़े लंगूरी चोर बैठे हुए हैं और आपके अकेली रहनेमें बड़ा खतरा है तो वह आपही मारे डरके मुझे अपने पाससे अलग न जाने देंगी। ऐसे एकान्तमें भेंट होने पर लाख बब्बू प्रेम भी बहादुरी कर दिखाता है। क्योंकि हर चीज़ अपने-अपने वक़्त पर अपनी खूबी दिखाती है। इसी तरह प्रेम भी दिन के कोलाहलमें अगर अफीमचियोंकी तरह बुद्धू बना ऊंघा करता तो आधी

रातके सन्नाटेमें चोरोंसे भी बढ़कर आंखे फाड़ कर जागता है। उस बौड़मपनमें इतनी अक़्ल कहां हो सकती थी जो इस फ़िलासफ़ीको समझता ? वह बेवक़ूफ़ था तो था। मैं तो नहीं हूँ। बस मैं दनसे उठकर ग़ुसलखाने और फिर पाखानेमें पहुँचा। मैडमके कमरेके द्वार बन्द। तब छज्जा और गैलरीकी तरफ़से जाना चाहा। मगर अररररर! दोनों तरफ़ के मेरे ही कमरेके दोनों द्वार बन्द मिले। टरकाये न टसके। इस कम्बख़्तीके आगे मेरी अक़्ल बेचारी क्या कर सकती थी ? मारे ग़ुस्सेके कटघरेमें शेरकी तरह रात भर फ़ुसकारता रहा।

सुबहको चाय बनाकर उन दरवाज़ोंको खोला तो खुल गए। शक हुआ कि कहीं मुझीसे तो रातको खोलनेमें कोई ग़ल्ती न हो गई हो। फिर भी हिम्मत करके मैडमके आगे चायकी तश्तरी रखते हुए कहा—

"रातको मेरे कमरेके दोनों बाहरी दरवाजे न जाने कैसे बाहरसे बन्द हो गए थे।"

"मैं बन्द कर देती हूँ। इसमें ताज्जुबकी कौनसी बात है ?"

"आप ?"

"हाँ मैं। ताकि आप अपने धर्मका पालन निर्विघ्न रूपसे कर सकें।"

"धर्म ?"

"अरे! क्या आप भूल गए कि आपको अपने बापका दाह-कर्म किये कुल तीन महीने हुए हैं ? और अभी आपको नौ महीने तक और तपस्वी की तरह फ़र्श पर सोना है।"

प्रेमका बुखार एकबारगी इतने जोरसे उतरा कि मैं चकराकर गिरते २

बचा। बड़ी खैरियत हो गई कि मैंने तुरन्त ही राम्हल्कर कह दिया—"जी हां। जी हां। आप बिल्कुल सही फ़रमाती हैं।"

हत्! तेरे बाप की!—मेरे नहीं, उस गदहे पतिके—उस कम्बख़्तको भी इसी साल मरना था।

(४)

बाप किसीका मरे और रञ्ज करें भइया अक़िल बहादुर सच जानिये उसके मरनेका जितना अफ़सोस मुझे हुआ उतना उसके सगे बेटेने भी न किया होगा। क्योंकि अब मुझे नौ महीने तक रो-रोकर दिन काटने पड़े। मैडमके साथ कहीं आने-जानेमें जो थोड़ी-बहुत उनकी संगत नसीब होती थी क्योंकि घर पर तो वह बराबर कमरा बन्द करके सोती थीं या लिखती-पढ़ती या गाया-बजाया करती थीं—बस उसी पर सन्तोष करते हुये यह सोचकर दिलको फुसला लेता था कि नौ महीने तक ग़र्ज़ी करनेके बाद आख़िर जगह मुस्तक़िल हो ही जायगी।

मगर इस मियादको सलामतीसे पार कर ले जाना भी दिनों दिन अब मुश्किल दिखाई देने लगा। क्योंकि बम्बईमें न मुन्शी, न मौलवी, न बाबू, न मिस्टर वहाँ जिसे देखिये वही सेठ है। कोट पतलून भी सेठ, अंगरखा पाजामा भी सेठ, और धोती कुर्ता भी सेठ। सूरत चाहे चमगीदड़ हो या बनाती, या चेहरे भरमें खाली नाक ही नाक हो क्योंकि फीतासे अगर नापने को मिलता तो ईश्वर झूठ न बुलवाये एक-एक नाक सवा तीन इञ्चसे कमकी न ठहरती, लम्बाईमें चाहे ऊँचाईमें—मगर टेंट या जेबमें हज़ार डेढ़ हज़ारके नोट हर वक्त मौजूद। पाई-पाईका हिसाब रखनेवाले दमड़ी-दमड़ी पर जान देंगे मगर शौकका यह हाल कि ख़ुद पहिनें चाहे रुपये-दो-रुपयेका अलपाका

या ज़ीन, पर बीबीको पहनायेंगे एक दम पाँच सौ रुपयेकी रेशमी साड़ी। तभी तो जिधर देखिये उधर मैडम दिखाई पड़तीं हैं। एक-से-एक भड़कीली और इतनी कि इन्द्रासन मात हैं! ऐसे ही शौक़ीनोंकी निगाह कम्बख्तीसे मेरी मैडम पर पड़ गई। फिर तो यह लोग जोंककी तरह ऐसा चिपकने लगे कि मैं मैडमका पति नहीं बल्कि कोरा खानसामा हो कर रह गया। क्योंकि इन लोगोंके लिये मुझे हर वक्त चाय तय्यार रखनी पड़ती थी। वहाँ का यही पान-इलायची है। और मज़ा यह कि साथ बैठ कर खुद भी पीयो। जिसके पेटमें घड़ी-घड़ी डेढ़ पाव गर्म पानी पहुँचा करे वह बेचारा आदमी कब रह सकता हैं? खारा अगियाबैताल हो जायेगा! इसीसे मेरा मिज़ाज अब हर वक्त गर्म रहने लगा यही जी चाहता था कि जो कोई मैडमसे बोले उसकी छाती पर चढ़ बैठूँ। उसपर मुसीबत यह कि मैं तो चुपचाप बैठे मुंह ताकूं और वह लोग बेधड़क मैडमके साथ लच्छेदार बातें करें। घन्टों, मानो मैडम मेरी नहीं उनके सगे बाप ही की तो हैं। इसके अलावा यह धड़का कि मेल-मिलापका द्वार अगर योंही खुला रहा तो इसीतरह भटकता हुआ कहीं मैडमका असली पति न टपक पड़े। कहाँतक सब्र करता? आखिर एक दिन मुझसे न रहा गया। मौका पाकर मैडमसे कही डाला।

"मिलनेवालोंके मारे मैं देखता हूं आपको एक मिनट भी चैन नहीं मिलता।"

"तो करूँ क्या? अगर वह लोग ठीक-ठीक हिन्दुस्तानी बोल सकते या आप ही अंग्रेज़ीमें बातचीत करना अगर अपनी भाषा का अपमान न समझते तो यह मुसीबत मुझे क्यों उठानी पड़ती?"

मैं अपनी जगह पर सिकुड़ गया क्योंकि सचमुच अंग्रेज़ी तो मैं उतनी

ही जानता था जितनी अर्द्धाशिक्षितोंको जाननी चाहिये, कुछ रेलमें तो नौकरी करनी न थी कि इशारों पर फ़र फ़र फ़र गिट-पिट करना सीखता। खैर अपमानके शब्दने इस वक्त पड़ा "जी हां अपमान है। हां......यह अपमानवाली बात तो आपने बहुत सही कही। मेरे दिलकी बात कह डाली। मेरे लिये अंग्रेज़ी बोलनेमें सचमुच बड़ा अपमान है। मसल ही मशहूर है कि मर्दोंके ज़बान एक न कि दो। मगर......मगर......हां वह कौन सी तरकीब की जाए जिसमें मिलनेवाले आपके समयको खराब न कर सकें।"

"यह कौन मुश्किल है? जब कोई आए। थोड़ी देर बैठनेके बाद आप कोई न कोई बहाना करके चल दिया कीजिये। वह आपही अपने घर का रास्ता लेगा।"

ओ हो हो! मैडमकी इस बुद्धिमानी पर मैं फड़क उठा। बेशक अकेलेमें कोई शरीफ़ आदमी किसीकी स्त्रीके पास नहीं बैठ सकता। दिल को पूरा विश्वास हो गया कि ईश्वरने संसारमें अगर किसी स्त्रीको मेरी पत्नी होने योग्य रचा है तो बस इन्हींको।

"मगर हाँ एक बात तो कहना मैं भूल गई। वह यह कि तार देकर फ़ौरन घरसे रुपये मँगवाइए। क्योंकि जो कुछ मेरे पास था वह सब खर्च हो गया। अब एक दिन भी चल नहीं सकता।"

अररररर! यह क्या ग़ज़ब? मेरा मिज़ाज एक बारगी ऐसा ठंडा पड़ा कि मैं चुपकेसे कलेजा थामकर बैठ गया। अब समझमें आया कि मर्दों को अपनी बीबियोंके आगे कैसे दुम दुबका जाती है।

अभी मैं मैडमके प्रस्ताव पर कुछ विचार भी नहीं करने पाया था कि

एक कम्बख्त कोट पतलून "हलो! बुलबुल? हलो! बुलबुल!" करता हुआ फट पड़ा। सरसे पैर तक आग लग गई। यह मरदूद कई दफे आ चुका था। इससे और भी गुस्सा चढ़ा इसी गुस्सेमें मुझे वहांसे टसकनेका ख्याल बिल्कुल जाता रहा। यकायक मैडमने याद दिलाई।

"आप तो आज सिनेमा देखने जानेवाले थे। अब तो तमाशेका वक्त करीब है। मगर मैं जा न सकूंगी। मुझे आज एक बड़ा जरूरी खत लिखना है।"

"जी हां जाता हूँ।"—कहकर मैं दनसे उठ खड़ा हुआ। बड़ी बात कि मेरे साथ वह कोट पतलून भी उठा और मैडमसे हाथ मिलाकर मुझसे कहने लगा कि—"चलिये हम भी कुछ दूर आपका साथ देंगे।"

मगर सड़क पर पहुँचते ही वह किनारा काट गया।

खाली जेब लेकर सिनेमा देखने कैसे जाता? इसलिये थोड़ी दूर जाकर मैं लौट पड़ा और सोचने लगा कि मैडमने जो रुपये मंगानेको कहा है उसका इन्तज़ाम किस तरहसे हो। मेरे घर कोई खज़ाना तो गड़ा नहीं है और हमारे लम्बरदार साहब भी ऐंठे हुए हैं। अगर दस-पाँच रुपये गाँवसे आयेंगे भी तो भइया अक्किल बहादुरके नाम जो मुझ तक पहुँचे या न पहुँचे और असली 'बुलबुल'के घरका ठिकाना जानता नहीं। बड़े चक्करमें पड़ गया। आखिर अक्ल काम कर गई और यह चाल सूझी कि अगर मैं अपने दाहिने हाथकी उँगलियाँ ज़रा झुलसा डालूँ तो यह कहनेका मौक़ा मिल जायेगा कि मैं नहीं लिख सकता आप ही मेरी तरफ़से लिखकर तार दे दीजिये। यह सोचकर खुशी-खुशी मैं अपने कमरेके द्वार पर पहुँचा। दरवाज़ा बन्द, मगर भीतर बातचीतकी भनक मालूम हुई। घबड़ाकर

खटखटाया। पूरे पाँच मिनट, दरवाज़ा खुला और मैडम अंगड़ाई लेती हुई बोलीं—"मैं तो अपने कमरेमें ख़त लिखनेमें इतनी व्यस्त हुई थी कि आपकी खटखटाहट पहिले सुन न सकी। मगर आप इतनी जल्दी लौट आए? क्या कुछ भूल गये थे?

मैंने गड़बड़ाकर और जलकर कहा—"हाँ अपना पर्स" और आँखें फाड़ कर चारों तरफ़ देखने लगा। गुसलखानेका द्वार मुझे कुछ हिलता हुआ जान पड़ा। बस शिकारी कुत्तेकी तरह उसके भीतर झपटा और वहाँ पहुँचतेही मैं दाँत पीसकर बड़े ज़ोरोंसे किटकिटा उठा।

जब तक मैडम भी घबड़ाकर पीछेसे झाँकने लगीं।—"क्यों क्या है? क्या कोई चोर तो नहीं घुस आया?"

"चोर? पक्का चोर, नम्बरी चोर। बदमाश चोर। मेरे साथ सड़क तक गया और फिर यहाँ घुस आया। तेरे चोट्टे की ऐसी तैसी। साले जा मैं पहिले तुझे मार डलूंगा तब तुझे पुलिसके हवाले करूँगा।"

कोट पतलूनकी धिघ्घी बन्ध गई। क्योंकि वह वहीं हज़रत कोनेमें दबके हुए थे।

मारे जलन और ग़ुस्सेके मैं अन्धा हो गया। मगर अफ़सोस! मैं अपना ग़ुस्सा पूरे तौर पर निकालने भी नहीं पाया कि बीच ही में मैडम खुशामदें करने लगीं।

"हाँ हाँ शोरगुल न कीजिये। पड़ोसके कमरेवाले क्या कहेंगे? अगर आप समझते हैं कि उन्होंने आपकी कोई चीज़ चुराई है तो उसके लिये जो चाहिये जुरमाना ले लीजिये। किसीकी जान और इज़्ज़त लेनेसे क्या फ़ायदा? आदमीसे ग़लती हो ही जाती है।"

वह इशारा पा गया। जल्दी से उसने अपनी जेबसे अपना 'पर्स' निकालकर मुझे थमा दिया। मैं पर्स देखने लगा और वह यों मौक़ा पाकर नौ दो ग्यारह हो गया।

पर्स खोलकर देखा तो उसमें एकदम डेढ़ हज़ार के नोट निकले।

(५)

अब तो चूहेदानी में तावड़तोड़ चूहे फंसने लगे। और एकसे एक डबल। मगर होते थे बेचारे बड़े शरीफ़। अपना हाल किसीसे नहीं बताते थे। इसलिये इसका सिलसिला टूटता हुआ नज़र नहीं आया। और एक ही सप्ताह में यह लोग सात हज़ार, पचासी हज़ार रुपये अपने पाजीपनका जुरमाना दे गए। मैं भी यह जुर्माना वसूल करनेमें बड़ा पक्का उस्ताद हो गया। और इस कामको बड़े शौकसे करता था। क्योंकि इससे मेरे दिलकी जलनको ठंढक पहुँचती थी और तार देनेसे बचनेके लिये अपना हाथ जलाना नहीं पड़ता था। मगर रुपये ले लेती थीं गिन गिनकर सब मैडम साहबा। क्योंकि रेलमें जेब कट जानेसे मैं अपने पास एक भी पैसा रखनेके योग्य नहीं समझा जाता था।

अब हम लोग निहायत शानसे अव्वल दर्जे की टैक्सी (किरायेकी मोटर) पर चढ़कर रातको ताजमहल होटलमें खाना खाने जाने लगे। वहाँ भी मैडमकी आड़ी तिरछी निगाहें और हल्की-हल्की मुस्कराहट गज़ब ढाने लगी। दो ही दिनमें बहुतेरोंसे जान पहचान हो गई।

तीसरी रातको जैसे ही हम लोग वहाँ पहुँचे मैडमने एक अखबार-वालेसे एक अखबार खरीदा और उसे खोलते ही ताज्जुबमें चीख उठीं और झुँझलाकर बड़बड़ाने लगीं—

"न जाने कैसे यह अख़बार वाले पता लगा लेते हैं ! हम लोग यहां मामूली आदमी बनकर ज़रा आरामसे रहने आए थे। मगर इन लोगोंके मारे कहीं रहने पायें तब तो ? देखिये मए फ़ोटोके हम लोगोंकी अस्लियत खोल दी। अब चैन क्या खाक मिलेगा !

आस-पासके लोगोंने भी यह बड़बड़ाहट सुनी और गर्दन बढ़ा-बढ़ाकर अख़बारकी ओर ताकने लगे। कुछ तो इतने बेसब्र हुए कि लपककर दूसरी कापी खरीद ली। फिर तो रोग इतना बढ़ा कि बात की बात में अख़बार वालेका सारा अख़बार ख़तम होगया अब जिसे देखिये वही एक दफ़ा हम लोगोंकी ओर ताकता था और एक दफ़ा अपने अख़बारकी ओर।

दस घड़ीधारीसे मैं घबड़ा उठा। जल्दीसे मैडगके हाथसे अख़बार लेकर देखा तो मैं भी बड़े ज़ोरसे चौंका। क्योंकि उसमें हमारा और मैडम का फ़ोटो छपा था और उसके ऊपर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था :—

साक्षात साहित्य तथा संगीत का शुभागमन

और नीचे लिखा था—

भिन्न भिन्न उपनामों से अनेकों ग्रन्थ के रचयिता

श्रीमान कोकिलानन्द बुलबुल

और संगीत तथा नृत्यकलाकी सम्राज्ञी उनकी रूपवती धर्मपत्नी

श्रीमती बुलबुल "बम्बई में"

और उसके नीचे हम लोगोंके सम्बन्धमें कालमके कालम रंगे हुए थे।

बम्बईमें

यह सचमुच बड़े ताज्जुबकी बात थी कि मैं स्वयं नहीं जानता था कि के० एन० बुलबुल से मतलब कोकिलानन्द बुलबुल के हैं और मैडम साहबा संगीत और नृत्य कला में इतनी निपुण हैं, उस पर यह गज़ब कि उनका पति लेखक भी था। अगर कोई पूछ बैठा कि आपकी कौन-कौन सी रचनायें हैं तो सिवाय बग़लें झांकनेके और कुछ न करते बन पड़ेगा। अखबार वाले ने भी किसी रचनाका नहीं उल्लेख किया जिससे कुछ जानकारी प्राप्त कर लेता। उसने तो यह लिखकर जान और घपले में डाल दी कि 'बुलबुल महोदय अपना व्यक्तित्व अपनी किसी रचनामें भी नहीं प्रकट होने देते। इसी कारण वह प्रत्येक रचनाके लिये अपना एक नया ही उपनाम रखते हैं, इधर इस ख्यालसे अलग प्राण सूख गए कि अगर असली बुलबुल मर नहीं गया है तो वह अब हम लोगोंका बड़ी आसानीसे पता लगा लेगा।

दूसरे दिन इस समाचारकी नक़ल गुजराती, मरहट्ठी, उर्दू और अङ्गरेज़ी पत्रोंमें भी निकल गई। फिर तो मिलने वालोंकी वह धूम मची कि होटलमें एक क्षण भी अकेले बैठना असम्भव हो गया। पहिले जो कनखियों से ताककर रह जाते थे वह भी अब बेधड़क पहुँचकर हाथ मिलाते और पास बैठ जाते। ईश्वर जाने यह कलाका सत्कार था या मैडमके रूप और सौन्दर्य्यका आदर।

सुबह होते ही एक सहकारी सम्पादक जी मेरा Interview लेने अर्थात् मुझसे साहित्यिक प्रश्न करने सीधे मेरे कमरेमें टपक पड़े। मेरे हाथ-पांव फूल गये और समझ लिया कि मेरे लिये मानो यमदूत आ गया। अब आबरूकी खैरियत नहीं। देवी देवताओंको याद करने लगा। उनके साथ एक लेखककी कुछ जली-कटी बातें भी याद पड़ गईं जिनको मैंने कभी

सुन रखा था। जब बला टालनेकी कोई युक्ति सुझाई न पड़ी तो मैं भी तक़दीर ठोंककर इमतहान देने बैठ गया और दिलमें कहा 'कुछ परवाह नहीं, आखिर तो यह मनुष्य ही है। जब मनुष्य है तब भइया अक़िल बहादुरसे कब पार पा सकता है? ऐसा जवाब दूँ कि दांत खट्टे हो जाएँ।

उसने पहिले ही सवालमें पूछा—"श्रीमान आपकी समझमें आपकी सबसे श्रेष्ठ रचना कौन है?"

इसके लिये तो मैं पहिले ही से तय्यार था। खूब धड़ाकेसे जवाब दिया—"वाह! श्रीमान् वाह! आप तो वकीलोंसे भी दो हाथ बढ़े मालूम होते हैं। खूब जिरह करना जानते हैं। अजी सम्पादकजी अगर मुझे अपने ही मुंह से बताना होता कि कौन सी पुस्तक मेरी लिखी हुई है तो मैं अपने असली नामसे न लिखा करता?"

वह—"आप अपने व्यक्तित्वको क्यों छिपाये रखना चाहते हैं?"

बिल्कुल यही सवाल होटलमें एकने मेरे सम्बन्धमें मैडमसे भी किया था। उसका जवाब अब तक मुझे बरज़बान याद था। निहायत शानसे मूछें ऐंठ कर बोला—"ताकि देखूँ कि हिन्दी संसार जिसके आप लोग विद्वान हैं कब तक इस योग्य होता है कि स्वयं उसको भांप सके।"

सम्पादक जी ऐसे बौखलाए कि उनके सोचे हुए प्रश्नोंका सिलसिला बिगड़ गया। अब अटकल पच्चू जो उनके मुंहमें आता था वही पूछने लगे।

वह—"हाँ हिन्दी संसारका आपके विचारमें क्या अर्थ है?"

मैं—"वह संसार जिसमें सब लेखक ही लेखक हों और ग्राहक एक भी नहीं।"

सम्पादकजी फड़क उठे—"धन्य हैं आप। यथार्थमें यही बात है तभी तो देखिये हम लोगोंका व्यवसाय पनपने नहीं पाता।"

मैंने उतावलीसे कहा—"कृपया जल्दी कीजिये। मेरे पास समय बहुत कम है।"

वह—"अच्छा हां, लेखकके क्या मानी?"

मैं—"बे पेटका जानवर।"

वह—"लेखक —सम्राट कौन है?"

मैं—"समालोचकका नातेदार।"

वह—"और समालोचक?"

मैं—"हार्दिक ज्वरका रोगी।

सम्पादकजी वाह करके फिर चहकनेवाले थे। मगर मैंने वैसे ही जल्दी करनेकी याद दिलाकर उन्हें गड़बड़ा दिया ताकि वह अपने प्रश्नोंके सोचनेका मौक़ा न पावें। दूसरे यह भी ख्याल था कि कहीं मैडम अपने कमरेसे निकल न पड़ें तो फिर यह यहांसे उठने का नाम न लें।

वह—"रामालोचना किसे कहते हैं?"

मैं—"अखबारोंमें गाली देनेके ढंग को?"

वह—"उत्तम रचना कौन कहलाती है?"

मैं—"वही जो सम्पादकों और प्रकाशकों को मुफ्त मिले।"

वह—"साहित्य किसे समझना चाहिये?"

मैं—"जिसके पढ़नेका जी न चाहे।"

वह—"शिक्षाकी पुस्तक?"

मैं—"जो बिना छड़ीकी मदद के पढ़ी न जा सके।"

वह—"नाटक ?"

मैं—"व्याख्यानों का संग्रह।"

वह—"और व्याख्यान ?"

मैं—"जिसके सुनते ही नींद आ जाए।"

वह—"कविता ?"

मैं—"जिसका अर्थ समझानेके लिये स्वयं कविजीको बुलाना पड़े।"

वह—"भला साहित्यिक कहलानेका कौन अधिकारी है ?"

मैं—"वह जो भाषाका विस्तार देखकर संस्कृतमें रोवे।"

वह—"अच्छा शिष्ट हास्य पर आपके क्या विचार हैं ?"

अररररर ! अबतो साहित्य सम्बन्धी पहिलेकी सुनी हुई जलीकटी बातों का मेरा भण्डार जिसके सहारे मैं अब तक धड़ाधड़ जवाब देता चला आया यहां पर सिटपिटा गया। इतना तो मैं जानता था कि प्रश्नका सम्बन्ध हँसीसे है मगर यह शिष्टका अड़ंगा बुरा लग गया।

आखिर दिमाग पर बहुत ज़ोर देकर सर खुजाते हुए कहा—"शिष्ट हास्य वह है जिसके पढ़ते समय मुंह तो ज़रूर खुल जाए। मगर···मगर···हँसीमें नहीं जम्हाईमें।

सम्पादकजी पहिले तो चकराये। फिर तुरन्त ही यकायक बड़े ज़ोरोंसे चिल्ला उठे—ओहो हो ! बड़ी दूरकी कौड़ी लाए। क्यों न हो ? धन्य हैं आप, बड़ा गहरा बटाक्ष है। सचमुच जितने भी इसके नमूने मुझे देखनेको मिले उनमें यही गुण पाया। पता ही नहीं चलता उनमें कौन सी हँसीकी बात है और कहां पर हँसना चाहिये।"

इस दफे तो अन्धेके हाथ मानो बटेर लग गई। मगर अब जो कहीं

कोई टेढ़ा मेढ़ा सवाल हो गया तो बनी बनाई आबरू सब खाकमें मिल जायेगी। इसलिये मैंने सम्पादकजीसे कहा—"इस सिलसिलेमें आपने यह तो पूछा ही नहीं कि सम्पादक कौन होता है कितना ज़रूरी सवाल है?"

वह—"हाँ हाँ ठीक है, भूल गया था। अच्छा बताइये सम्पादक कौन होता है?"

मैं—"मेरी समझमें तो वह जिसके लेख कहीं नहीं छपते। तभी तो उसे लेखक होनेके बदले एकदम सम्पादक बन जानेकी ज़रूरत पड़ती है।"

सम्पादकजीने फिर कोई दूसरा सवाल नहीं किया चुपकेसे कागज़ समेट कर चलते हो गये।

(६)

इस इन्टरव्यू का दूसरे दिन छपना था कि अखबारी दुनियामें एकाएक खलबली मच गई। हर तरफ़ "बुलबुल" महोदयका नाम गूंज उठा। "साहित्यकी आधुनिक दशा पर अपूर्व व्यङ्गपूर्ण दृष्टि" के नामसे मेरे एक-एक शब्द पर आलोचनाओंका तांता बंध गया और आलोचक उसके वह-वह मानी पहनाने लगे कि "बुलबुल"के पुरखोंको भी नहीं सूझ सकता था। सच तो यह है कि जो काम उसके सैकड़ों ग्रन्थोंने भी नहीं किया होगा वह मेरे एक "इन्टरव्यू" (Interview) ने कर दिखलाया। क्यों न हो? बड़े आदमीकी बड़ी बात। अब मेरे लेखक न होनेके बारेमें भला किसको शक हो सकता था? मैडम भी मेरा लोहा मान गईं। मगर इस बात पर ज़रा बिगड़ बैठीं कि मैंने अपना 'इन्टरव्यू' मुफ्त क्यों दिया और आइन्दाके लिये ताकीद कर दी कि 'इन्टरव्यु'के लिये कमसे कम पचारा रुपये ले लिया करो तब कोई शब्द अपने मुंह या क़लमसे निकालो।

मैडमने यह नुसखा खूब बता दिया। मेरी प्रतिष्ठा भी अटल हो गई और मेरी आबरू बिगड़नेका भी कोई खटका न रहा। न नौ मन तेल होता था और न राधा नाचती थीं। वरना भइया अक्किल बहादुरका दिमाग 'हलवाईकी दूकान और दादाजीका फ़ातहा' हो जाता।

मेरा सम्मान बढ़नेके साथ मैडमका भी आदर सौगुना बढ़ गया। एक तो शिक्षित सुन्दर, और फैशनेबिल युवती, दूसरे संगीत तथा नृत्यकलाकी सम्राज्ञी तीसरे किसी साधारण व्यक्तिकी नहीं बल्कि एक ऐसे साहित्य-सम्राटकी स्त्री जिसके नामकी धूम मची हुई थी और जो लखपतियोंकी तरह बड़े-बड़े होटलोंमें खाना खाता था। हर तरफ़से निमन्त्रणोंकी भरमार होने लगी। परन्तु यह बताना मुश्किल है कि उनमें कितने साहित्य वा संगीत कलाके सत्कार हेतु होते थे, कितने मैडम ऐसी प्रतिष्ठित और भद्र महिलासे घनिष्ठता प्राप्त करनेकी खातिर, कितने आत्म-सम्मानके विचारसे और कितने इस ख्यालसे होते थे कि ऐसे नामी लोगोंके हमारे यहाँ आ जानेसे हमारा नाम अखबारोंमें छप जायगा और तब हम भी पांचो सवारोंमें गिने जायेंगे। इसलिये हम लोगोंने बहुत सोच विचार कर पहिले एक करोड़पति सेठका निमन्त्रण स्वीकार किया।

वहाँ बहुत ही बड़े-बड़े आदमी निमन्त्रित थे जिनमें कुछ मिल और फ़िल्म कम्पनियोंके मालिकान, एक राजकुमार और एक स्वतन्त्र राजा भी थे जो सैर करनेके लिये बम्बई आए हुए थे।

दावतमें 'शैम्पेन' की बोतलें खूब उड़ीं। मगर मैडमने यह कहकर उसे छूआ तक नहीं कि इनके (यानी मेरे) बाप हाल ही में मर गए हैं, इसलिये हम लोगोंको अपने यहाँकी रीतिके अनुसार साल भर तक इस

चीजोंसे परहेज़ करना है। पर जब बातोंमें पता चला कि इसकी एक बोतल अट्ठारह बीस रुपयेकी है तब तो पानीके बदले भूलसे इसकाही गिलास मेरे हाथमें आ गया। मगर राम! राम! आधे ही घूंटमें बुलबुलके पिताजी याद आ गये। जल्दीसे मुंह बिचकाकर उसे रख दिया। धत् तेरे की! न सिरका न शरबत। अजब गड़बड़ स्वाद! जब के पैसेकी ताड़ीमें भी यही नशा और खटारा है तब यह वहाँकी बुद्धिमानी है कि अट्ठारह रुपयेकी बोतल पियो? खैर यह अच्छा हुआ कि साबकी निगाहें वहाँ मैडम ही को ताकना जानती थीं मेरी ओर कोई फूटी आँखसे भी नहीं देखता था। मगर सरूर गठ गया।

इसी सरूरकी हालतमें, जब हम लोग खाना खानेके बाद ड्राइंग रूम में बैठे और मैडमसे अपनी कलाका परिचय देनेके लिये अनुरोध पर अनुरोध किया जाने लगा और मैडम यह कहकर आनाकानी करने लगी कि मैं बाज़ारी स्त्रीकी तरह किसी मण्डलीमें गा नहीं सकती मेरी यह कला अपने और अपने पतिका दिल खुश करनेके लिये है, तब मैंने ऐंठ कर कहा—"कुछ परवाह नहीं। यह मेरे दोस्तों की मण्डली है। सब मेरे दोस्त हैं। आप गाइये।"

पतिकी आज्ञा पाकर मैडमको पियानो पर आना पड़ा। अब न पूछिये हाल। सबको एक दम दस-दस बोतलोंका नशा चढ़ गया। झूम-झूम कर हर साँस में वाह-वाह निकलने लगी। गलेबाज़ीमें वह सुरीलापन और मिठास। हाव-भाव और चितवनमें वह राज़का जादू कि मैं तो बुद्धू बना दंग होकर देखता ही रह गया। गजरे और फूलोंकी वर्षासे मैडम ढक गईं।

चलते समय सैकड़ों धन्यवादके साथ सेठजीने एक मोतियोंका हार और एक हजार रुपयेके नोट भेंट देकर मैडमकी कला का सत्कार किया और एक फिल्म कम्पनीके मालिक अपनी मोटर पर हम लोगोंको घर पहुँचाने आये। आते ही इस बातके लिये लगे दिमाग चाटने कि "मैडम" उनकी 'स्टूडियो' में कोई पार्ट कर दें जिससे उनकी फिल्मकी प्रतिष्ठा बढ़ जाए कि इसमें भले घरकी बड़ी-बड़ी प्रतिष्ठित महिलाओंने काम किया है।

मगर मैडम इसको कब मान सकती थीं? यह कहकर साफ इन्कार कर दिया कि—"नहीं जनाब यह कैसे हो सकता है। इसमें मेरे पतिका अपमान है, मैं कोई पेशे वाली नहीं हूँ। मुझे क्षमा कीजिये। आपको एक से एक रूपवती गाने वालियाँ बाजारमें मिल जायेंगी।"

उन्होंने जवाब दिया—"हाँ हाँ वह लोग तो मिलती ही हैं। बल्कि सच पूछिये तो हर वक्त कम्पनीका फाटक घेरे रहती हैं और हम लोग उनसे सीधे मुंह बात तक नहीं करते। क्योंकि वह कितना ही उद्योग करें उनके भावोंमें वह भोलापन, लज्जा और पवित्रताकी झलक जो भद्र महिलाओंका निजी गुण है किसी प्रकार भी नहीं आती। इसी दोषको दूर करनेके लिये अब हम लोग एककी जगह चार-चार खर्च करके भद्र महिलाओंका सहयोग प्राप्त कर रहे हैं।

मैडम बीच ही में व्यंग वर्षा कर बैठीं—"तो यह कहिये कि आप लोग भद्र महिलाओंको भी बाज़ारी बनाना चाहते हैं। जनाब ये भद्र महिलाओं के गुण जिनका आपने बखान किया है बस उसी समय तक है जबतक हमारी पूर्वी आदर्श अर्थात् मन, वचन और कर्म इन तीनोंकी दृष्टि में पतिव्रत धर्म और सतीत्वकी महिमा अपार है। नाट्य-कला तो कुठाईका

पूरा ढोंग करना है। इस झुठाईके आगे भला यह आदर्श कहीं ठहर सकता है? जब आदर्श ही चौपट हो गया तब महिलाओंकी मर्यादा कौन चमकायेगा? जब उन्हें आप ढोंग करना सिखायेंगे, अपने हृदयसे छल करना बतायेंगे, पर पुरुषोंके साथ वह हाव-भाव दर्शाने को कहेंगे जिसे अपने पतिके आगे भी दिखानेमें उन्हें संकोच है। तब हाँ तब, आपही बताइये उनमें वह सरलता, वह माधुर्य्य, वह लज्जा, वह संकोच जो स्त्रियोंको देवियाँ बनाती हैं कब ठहर सकती हैं। मैं तो यही कहूँगी कि इन बेचारियोंको इस काँटेदार रास्तेकी ओर न घसीटें तो अच्छा है। यह उन्हींके लिये प्रतिष्ठित मार्ग हो सकता है जो अपनी जीविकाके लिये जन्मसे ढोंग करना सीखती आई हैं। वही इसपर सफ़ाईसे चल भी सकती हैं। आखिर ये लोग जायेंगी कहाँ? समाजमें इनका भी तो रहना ज़रूरी है। जिस मकानमें नाली न हो वह कितने दिन खड़ा रह सकता है? सारा मकान गन्दा होकर बैठ जायगा।"

मारे जोशके मैं भी उस वक्त थोड़ी सी अंग्रेज़ी बोल गया—"Of course! Of course! बिल्कुल ठीक!"

मगर हज़रतकी ज़बान अब भी बन्द न हुई। लगे खण्डन करने—"बहससे तो अच्छी भी चीज़ बुरी साबित कर दी जा सकती है। मगर आपको यह भी देखना चाहिये की कलाकी उन्नति उसके प्रचारमें है। ईश्वर किसीको कोई गुण देता है तो इसीलिये कि उससे संसारका कुछ भला हो। अगर संसारको लाभ न हुआ तो वह गुण या कला किस कामकी?"

अब तो मुझसे न रहा गया। गर्दन टेढ़ी करके धड़ से अखाड़ेमें कूद

पड़ा—"वाह! जनाब यह अच्छी कही। ईश्वरने मेरी मैडमको रूप और सौन्दर्य दिया है तो आपकी यह राय है कि वह अपने सौन्दर्यका सदामर्त बाटें! बस बस रहने दीजिये। मुझे ऐसी बातें पसन्द नहीं।"

वाह रे मैं! एक ही उत्तरमें हज़रत ठंढे पड़ गए। सब टांय टांय भूल गई। इसी को कहते हैं सौ सुनारकी तो एक लोहारकी।

(७)

फ़िल्म वालोंने अन्तमें न जाने मैडमको कौनसी पट्टी पढ़ाई कि दो ही दिनकी रगड़ करनेमें वह एक फ़िल्ममें डेढ़ हज़ार रुपये पर पार्ट करने के लिये राज़ी हो गईं। वह फ़िल्म लगभग तैयार हो चुका था और जल्दी ही उसके बाज़ारमें आनेका बड़े ज़ोरोंसे विज्ञापन छप रहा था। उसी में थोड़ी सी जगह खोखली करके उसके डाइरेक्टर साहबने मैडमके लिये झट एक पार्ट गढ़कर ठूंस दिया। और मुझसे कहा—"अगर आप भी कोई 'स्टोरी' कम्पनीके लिये ठीक-ठीक लिख दें तो हम ज़रूर उस पर विचार करेंगे। मगर स्टोरी फ़िल्मके वास्ते हो। याने उसमें गाना, रोना, हँसना, नाचना, दौड़ना, भागना, लड़ना और प्रेम करना सब एक साथ हो। देखिये इसके लिये एक अच्छा और एक बदमाश राजा रक्खें और एक मसखरा भी। मगर सब गाने और नाचने वाले हों। अच्छावाला राजा खूब गायेगा और खूब जलसा करायेगा। उसके बाद वह एक लड़की पर आशिक़ हो जायेगा। उस वक़्त बदमाश राजा उस लड़कीसे बोलेगा तुम उसका साथ नहीं हमारा साथ आओ और झट उसको अपना घोड़ा पर उठाकर ले भागेगा। तब अच्छावाला राजा मोटर पर उसको पकड़ने जायेगा। मोटर और घोड़ा खूब दौड़ेगा। फिर बहुत बहुत आदमी

दौड़ेगा। सब तलवार से लड़ेगा, बदमाश हार जायेगा, उसको अच्छावाला राजा पटककर फ़ायर कर देगा। इस माफ़िक वह उस लड़कीको पा जायेगा। इसीमें आप सम्वाद भर दें बस स्टोरी फ़र्स्ट क्लास बन जायेगा।"

मैंने सर खुजाकर जवाब दिया—"स्टोरी तो मैं लिख देता। मगर क्या बताऊँ मेरी नानी अब ज़िन्दा नहीं हैं। उन्हें इस ढंगकी कहानियाँ एक नहीं सैकड़ों याद थीं।"

नलो सस्ते छुट्टी मिल गई—अब जो कहीं ऐसा प्रस्ताव होता मैं कह देता कि मैं यहाँ आराम करने आया हूँ, या स्टोरी लिखने। मुझे फ़ुरसत नहीं है।

मैडमको अपना 'पार्ट' तय्यार करनेमें कुछ भी समय नहीं लगा। और न 'रिहर्सल'में उन्हें कुछ बताए जानेकी आवश्यकता पड़ी। उन्होंने तो अपने नाट्यमें ऐसा कमाल दिखाया कि डाइरेक्टर साहब भी दाँतों उँगली दबाकर रह गए। इधर "शूटिंग" (नाट्य का फ़ोटो) होने लगी और उधर उनकी एक-एक अदाके फ़ोटोके साथ अखबारोंमें उस फ़िल्म का विज्ञापन निकलने लगा। फ़िल्म-संसारके कोने-कोनेमें श्रीमती 'बुलबुल' की धूम मच गई। फिर तो उनको अपने यहां बुला लेनेमें कई कम्पनियों में लाग-डाँट शुरू हुई। बाहरी लोगोंमें दावत वाले राजकुमार और स्वाधीन राजा साहब सबके अलावे लखनऊके एक नवाब साहब भी जिनकी कारिस्तानीकी खबर मुझे टेलीफ़ोन पर बराबर मिलती रही मगर सूरत देखनी कभी नसीब नहीं हुई थी मैडमको हड़प ले जानेके मन्सूबे बांधने लगे। इन लोगोंके टेलीफ़ोनकी घन्टियोंके मारे एक मिनट भी चैन से बैठना हराम हो जाता।

मैडकके पार्टकी तय्यारी और शूटिंगमें कुल दस दिन लगे, क्योंकि कम्पनीवालोंको जल्दी थी ही और उधर मैडमने भी अपनी अपूर्व नाट्यकलासे उनके कामको आसान करके उनका बहुत सा समय बचा दिया। इससे छुट्टी मिलते ही उसी दिन मैडमका दूसरा ठेका तीस हजार पर एक दम दो वर्षों के लिये हो गया। जिसमें से पन्द्रह हजार तो उसी वक्त ले लिये गए और बाकी पन्द्रह हजार दूसरे सालके शुरूमें दिये जानेका वादा हुआ। इसके बदलेमें शर्त यह हुई कि आजकी तारीखसे दो साल तक मैडम इस कम्पनीको छोड़कर अन्य कहीं नहीं काम कर सकतीं वरना कम्पनी ठेकेकी कुल रक़म यानी तीस हज़ार रुपये बतौर हर्जाना मैडमसे पानेकी अधिकारिणी हो जायगी।

इस बेढब शर्तकी खबर पाते ही राजा साहब अपने सेक्रेटरीके साथ बौखलाये हुये आ धमके और हाथ मल-मल कर कहने लगे—"यह क्या अनर्थ किया आपने? मैंने तो आपके भरोसे अपने राज्यमें फ़िल्म कम्पनी खोलनेका विचार कर ही लिया था।"

मैडम ने जबाव दिया—"क्या करूँ? जब सर पर कोई सवार हो जाता है तब मुझसे कुछ करते धरते नहीं बनता। मैं आपकी सेवा से भला कब मुंह मोड़ सकती हूँ। कम्पनी खुलते खुलते न जाने अभी कितना समय लगेगा। खुलने दीजिये तब देखा जायेगा।"

सेक्रेटरी साहब बोले—"कम्पनी चाहे जब खुलती आपकी तनख्वाह तो उसी दिनसे गिनी जाती जिस दिन आप हम लोगोंके साथ रवाना होतीं। हम लोग बस आपही के इन्तजारमें अब तक रुके हुए थे। तीस हजार में दो बरस! यानी कुल साढ़े बारह सौ रुपये माहवार! उस पर इतनी

पाबन्दी। और हमारे यहाँ आप कुछ न पातीं तो दो बरसोंमें कम से कम पचास हज़ार तो मिल ही जाते। राजा महाराजाके मुक़ाबलेमें भला कम्पनीवाले क्या दे सकते हैं।

राजा साहबने सर हिलाकर कहा—"बेशक।"

मैडम बोलीं—"आप पहिले मुझसे अगर यह बातें साफ़-साफ़ कह देते तो मुझसे यह ग़लती हर्गिज़ न होती। अब तो मेरे हाथ कट गए।"

उसी वक्त, नवाब साहबका बैरा एक लम्बा-सा लिफ़ाफ़ा लेकर आया। उधर टेलीफोन की घंटी घनघनाई।

मैडम टेलीफ़ोन पर बातें करने लगीं—"Yes! राजकुमार जी! .....हाँ हाँ, मुझे ठेका तोड़नेमें तीस हज़ार रुपये नक़द देने पड़ेंगे। .....नहीं नहीं आप रुपये लेकर न आइये, मैं माहवार तनख्वाह न लूंगी दो वर्षों की सब तनख्वाह और यह तीस हज़ार रुपये पेशगी ले लूंगी तब यह ठेका तोड़कर बम्बईसे कहीं जानेके लिये क़दम उठाऊँगी। क्योंकि राजाओं और राजकुमारों के मिजाज़ का कौन ठिकाना? महीने दो महीने बाद कहीं आप धता बता दें तो मैं न इधर की रहूँ न उधर की। .....अच्छा सोच लीजिये।"

इसके बाद मैडमने नवाब साहबका लिफ़ाफ़ा खोला और पढ़कर राजा साहबके हाथमें देती हुई बोली—"अब बताइए मैं क्या करूँ? किसकी आज्ञा पालन करूँ और किसकी नहीं?"

नवाब साहबने लिखा था कि—".....कुछ परवाह नहीं। मैं आपको अस्सी हज़ार रुपये दूँगा। तीस हज़ार ठेका तोड़नेके लिये और पचास हज़ार आपकी दो बरसोंकी तनख्वाह। इस वक्त, इतने रुपये

मौजूद नहीं हैं। इलाकेपर आज मैं अपना खास आदमी रुपयेके लिये भेज रहा हूँ। उम्मीद है आठ-दस दिनमें वापस आ जायेगा। आप दसवें दिन लखनऊ चलनेके लिये बिल्कुल तैयार रहिये। वहाँ फ़िल्म कम्पनी खोलनेमें मुझे जरा भी देर न लगेगी। सब सामान यहींसे खरीदता चलूंगा। कहानी लिखनेके लिये आपके शौहर हैं ही। उन्हें भी अच्छी तनख्वाह दी जायेगी और यहाँ ऐक्टरों की कमी नहीं है।"

खत पढ़नेके बाद सेक्रेटरी साहब गम्भीर होकर बोले—"अब तो इस मामलेमें हाथ डालकर हाथ खींचनेमें हमारे अन्नदाता जीका बड़ा अपमान है। कुछ भी हो अब आपको हमारा साथ देना जरूरी है। हमलोग यह नहीं सह सकते कि एक मामूली इलाकेदार हमलोगोंको नीचा दिखा दे।"

राजा साहबने मूछों पर ताव देकर कहा—"बेशक! सेक्रेटरी! लिखो नब्बे हज़ारका 'चेक'। और अब बताइए किस दिन यहाँसे चलने की तैयारी की जाए।"

मैनेजर—"सामानकी खरीदारीमें कमसे कम पाँच छः दिन लगेंगे और इधर मुझे भी ठेका तोड़नेके लिये एक सप्ताहका नोटिस देना पड़ेगा, इसलिये अगले सोमवारको चलिये। मगर सेक्रेटरी साहब इन चेकोंको आप अपने ही नाम लिखिये ताकि इनके रुपये आपही बैंकों से निकालकर मुझे दे जाँए और जो कुछ लिखा-पढ़ी करनी हो वह अब हमारे हस्ताक्षरके लिये तैयार लाइए।"

"हाँ हाँ यही तो मेरी भी राय है।"

घन्टे भर बाद सेक्रेटरी साहब एक पोर्टमैन्टोमें नोटोंके बन्डल लिये अकेले पहुँचे और पचासी हज़ार गिनकर मैनेजरके आगे ढेर कर दिया और

नब्बे हज़ारकी लिखी हुई रसीद मैडमके दस्तखत और मेरी गवाहीके लिये सामने रख दी।

मैडमने मुस्कुराकर उसपर दस्तखत कर दिया और बोलीं—"मैं आपके इशारेको समझ गई थी। इसीलिये मैंने कहा था कि आपही चेकों के रुपये लाकर मुझे दे जाएँ।

भइ वाह! इतने बड़े-बड़े लेन-देन मेरे सामने हुए और किसी कम्बख्त ने मुझे एक रुपया भी न दिया। कितने अफ़सोस की बात है।

(८)

पचासी हज़ार राजा साहबसे, पन्द्रह हज़ार फ़िल्म कम्पनीसे, डेढ़ हज़ार उस 'पार्टी'के लिये जो मैडम कर चुकी थीं, मोतियोंके हारके साथ एक हज़ार दावत करनेवाले सेठसे और सात हज़ार से भी ज़्यादे इधर-उधर से! बापरे बाप! इतने रुपये एकबारगी जिस मकानमें इकट्ठे हो जायं उसमें रहनेवालोंको भला नींद कब पड़ सकती है? रात भर करवटें बदलते ही बीता। हर क्षण यही धड़का लगा रहा कि कहीं कोई दरवाज़ा तोड़कर मेरा और मैडम दोनोंका गला न दबा दे। खैर, इस बातका तो पता चल गया कि जिसकी बीवी सुन्दर फैशनेबिल और गुणवती हो फिर उसे न रुपयोंकी कमी हो सकती है और न दोस्तोंकी और इसके साथ मुझे यह भी विश्वास हो गया कि राजा साहबके राज्यमें पहुँचते ही मुझे कम्पनीकी मैनेजरी ज़रूर मिल जायगी और अगर लेखक ही बनना पड़ा तब भी कोई हर्ज नहीं। कोई पंडित नौकर रख लूंगा जो कहनेको हमारा भण्डारी होगा, मगर असलमें हमारे लिये महाभारत या प्रेमसागरसे कोई न कोई कहानी लिख दिया करेगा। दुनियामें कौन

काम मुश्किल है ? बस करनेका ढंग चाहिये। बड़े-बड़े हाकिम खाली दस्तखत ही करते हैं तो हम क्यों न ऐसा करें ?

इन्ही मनसूबोंमें सुबह बड़ी देर तक पड़ा रहा। उस दिन मेरे लिये छुट्टी भी थी, क्योंकि मैडमने रात ही को अपने कमरेमें जाते वक्त, कह दिया था कि मेरा सर भारी मालूम होता है। कल दिन भर पड़ी रहकर पेटको एक दम आराम दूंगी तब मेरी तबियत ठीक होगी। इसलिये चाय पीनेके लिये मुझे सुबहको मत जगाइयेगा।

आठ बजे पोस्टमैन कई अखबार दे गया। लेखक होनेके नाते पहले तो मेरे नाम बहुत से अखबार आते थे मगर अब धीरे-धीरे कम हो चले थे। उनमेंसे एकको खोलकर ज़रा उलटने-पुलटने लगा। एकाएक मेरी नज़र "श्रीमान बुलबुल की चोरी" नामक लेख पर पड़ी। उसमें किसी गुमनाम लेखककी पुस्तकको "बुलबुल"की रचना बताकर खूब धुलखियाँ झाड़ी गईं थी। दूसरा अखबार खोला तो उसमें पहलेके छपे हुए मेरे 'इन्टरव्यू'की धज्जियाँ उड़ाई गई थी। अब याद आया—इन दोनोंके सम्पादकोंके लेख माँगनेपर मैंने मैडमके बताए हुए नुसखेका प्रयोग किया था, यानी पुरस्कारका अड़ंगा लगाकर आबरू बचाई थी। भाई वाह ! मुफ्त लेख दो तो साहित्य-सम्राट् , न दो तो साहित्य-चोर कहलाओ। इस अखबारी दुनियाने तो गिरगिटके भी कान काट लिये। शाबाश !

इतनेमें एक आदमी मुझे एक लिफ़ाफ़ा देकर चला गया। उसमें एक पत्र, एक लेख और एक पाँच रुपयेका नोट था। मैंने जल्दीसे नोट निकालकर अपनी जेबमें रक्खा और खत पढ़ा—

"साहित्य-सम्राट् श्रीमान् "बुलबुल" जी !

कृपया इसके साथके लेखको सुधार दीजिये। इस कष्टके लिये पांच रुपयेकी तुच्छ भेंट सेवामें स्वीकार हो।

भवदीय—

"लेख का लेखक"

अब अखबारवाले जो चाहें बकें। संसारमें कमसे कम एक आदमी तो ऐसा है जो मुझे दिलसे साहित्य-सम्राट् समझता है और उसके साथ पांच रुपयेकी पूजा भी चढ़ाता है। यह अलबत्ता असली सत्कार है। कलेजा बासों उछल पड़ा क्योंकि यों तो मेरे पास खज़ानाका खज़ाना था। मगर जो अख्तियार मुझे इस पांच रुपये पर मिला वह तो उसपर नहीं था।

यद्यपि इन दिनों बराबर अखबार पढ़ते-पढ़ते अब मेरी क़ाब्लियतमें कोई कमी रह नहीं गई थी, तथापि मैंने सोच लिया कि इस लेखका कोई भी शब्द काटकर इसके लेखकका दिल न दुखाऊँगा। लिख दूंगा सब ठीक है। रुपये हज़म करनेका इससे बढ़कर और कोई रास्ता उपाय हो नहीं सकता और तारीफ़ यह कि देनेवाला भी खुश हो जायगा। क्यों न हो? आखिर भइया अक्लि बहादुरकी सूझ ही तो!

अब मैं ज़रा अकड़कर लेख पढ़ने लगा। नाम ही देखकर मेरे मुंहसे वाह-वाह निकल पड़ी। बेशक लेखका नाम रखे तो ऐसा ही, जिसपर एक दफे मुर्दा दिल भी बेतहाशा टूट पड़े।

'चालीस दिनमें लखपति"

"शातिरहुसेन लखनऊके एक भांडका लड़का था। गाने, बजाने और नाचनेमें बचपन ही में कमाल करने लगा। हाव-भावमें मशहूरसे मशहूर

रंडियां उसका मुक़ाबला नहीं कर पाती थीं। ईश्वरने उसे सूरत भी ऐसी ज़नानी दी थी कि उसपर ज़नानी ही पोशाक फ़बती भी थी। इस पोशाक में उसकी चालढाल और बात-चीत से कोई नहीं भांप सकता था कि वह लड़की नहीं है। वह था भी बड़ा खूबसूरत।

"ज़मानेने नाच-गानेके शौक़ीनोंको सिनेमाकी ओर खींच लिया और शादी-ब्याह में जलसोंका रिवाज भी कम होगया। इस कारण शातिरहुसेन के पिताकी मण्डली टूट गई। उसमेंसे कोई बैंजा बांधने और कोई तामलोट बनाने लगा। शातिरहुसेनके पिताने भी बनारस जाकर ताम्बाकू की दूकान खोली और पीरा माफ़ कराकर अपने लड़केको पुनः स्कूलमें भर्ती करा दिया ताकि वह पढ़-लिखकर कोई नौकरी पा जाय।

"बनारसमें रहते-रहते हिन्दुओंकी रीति-रिवाज, रहन-सहन और हिन्दी भाषाका ज्ञान शातिरहुसेनको अच्छी तरह हो गया और अपनी तीक्ष्ण बुद्धिके बलपर वह स्कूलके सब इम्तहान पास करके बड़ी जल्दी कालेजमें पहुँच गया। मगर अब भी उसकी सूरतपर एक भी रोआं नहीं निकला और न निकलनेकी कोई सम्भावना दिखाई पड़ी। क्योंकि वह उस मिट्टीका बना था जिसपर घास निकलती ही नहीं। वह पुरुष होनेपर भी बेदाढ़ी-मूंछ के था। उसपर उसे अपने बाल बढ़ाकर पट्टे रखानेका बड़ा शौक़ था। इसलिये उसे कालेजके लड़के बहुत परेशान करने लगे। आख़िर आजिज़ आकर उसने अब छोटी-छोटी नक़ली मूंछें लगानी शुरू कीं। फिर भी उसकी परेशानी कम न हुई। इसी बीचमें उसके पिताका देहान्त हो गया और वह कालेज छोड़कर बम्बई भाग खड़ा हुआ।

"सोचे हुए था कि बम्बईमें उसके नाच, गाने और ज़नानी सूरत की बड़ी क़द्र होगी। मगर सर पटकनेपर भी वह न किसी फ़िल्म कम्पनी के भीतर और न किसी नाटक मण्डली ही में घुसने पाया। अन्तमें हताश होकर वह एजेन्टोंसे अखबार लेकर सड़कोंपर बेचने लगा। पर इससे उसकी गुज़र-बसर न हुई। तब उसने रंडियोंके मुहल्लेमें चक्कर लगाकर रातको उनकी दलाली करनी भी शुरू कर दी। इस तरह उसे बहुत से रुपयेवाले शौक़ीनोंसे जान-पहचान होगई।

"धीरे-धीरे उसने अखबार बेचना छोड़कर अखबारोंमें समाचार भेजनेका सिलसिला बांधा और यों वह कई पत्रोंका स्थाई रूप से सम्ब्राददाता बनकर निर्धनोंके मुहल्लेमें एक पूरा कमरा लेकर रहने लगा, पर दलालीका काम भी जारी रक्खा। इससे उसे आमदनी भी अच्छी हो जाती थी और अखबारोंके लिये सनसनी-पूर्ण समाचार भी अधिकतर रंडियों ही के मुहल्लेमें मिलते थे। मगर रहता था मूंछ लगाकर बनावटी भेषमें। यद्यपि उसे महीनेमें सत्तर अस्सी और कभी-कभी सौ रुपये तक मिल जाते थे तथापि उसे सन्तोष नहीं होता था। वहांके लखपतियों को देख-देखकर उसे यह धुन सवार हो गई कि किसी तरह वह भी लखपति हो जाता तो शान रहती। वह सोचा करता था कि इधर अखबारी दुनियाकी नकेल मेरे हाथमें है, जिधर चाहूँ उधर घुमा दूं, उधर बहुतसे ऐसे सेठोंको जानता हूं जो रूपके पीछे दीवाने हो सकते हैं; उस पर ईश्वरने मुझे सूरत और बाजने-गानेका हुनर दिया है।

"आखिर सोचते-सोचते एक दिन उसे चालीस दिनोंमें लखपति बन जानेका एक उपाय सूझ गया और वह उसी क्षणसे एक ऐसे आदमीकी

खोजमें रहने लगा जो भीतर बाहर हर तरफ़से मूर्ख ही मूर्ख हो मगर समझता हो अपनेको बड़ा ही चालाक। क्योंकि ऐसे मूर्खको अपने साथ अपने पतिके रूपमें रखनेसे किसीको स्वप्नमें भी शक नहीं हो सकता कि उसकी स्त्री पुरुष है। दूसरा फ़ायदा यह है कि पराई स्त्री अगर कुछ भी सुन्दरी हुई तो दूसरोंको अत्यन्त प्यारी जान पड़ती है। इसप्रकार मूर्ख पति तो इस मामलेमें कामी जनोंके लिये सोनेमें सुहागेका काम करता है। मगर इसके लिये मुसलमान नहीं हिन्दू पति चाहिये, ताकि लोगोंको मेरे नाच-गानेपर यह भ्रम न हो कि अरे! यह कोई वेश्या है जो अब घर बैठ गई है। यहां सारा कारबार प्रतिष्ठा पर है; जितनी ही मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी उतना ही अधिक मेरी सुन्दरता और कला अपना प्रभाव डालेगी।"

यह भूमिका बांधकर उसने अपना प्रोग्राम इस तरह बनाया :- "पत्नी के रूप में मूर्खके साथ किसी फैशनेबिल मुहल्लेमें किरायेके मकान में सुबह-शाम रहना और बड़े-बड़े होटलोंमें उसके साथ जाकर खाना खाना। उसके बाद अपने कमरेमें बन्द होकर पुरुष-भेष में दूसरी राह से अपने पुराने स्थान पर पहुँच जाना और सम्वाद-दाताका काम करते हुए अखबारोंमें इस अनोखे जोड़ेकी धूम मचाना और शौकीन सेठोंकी कामाग्नि भड़का कर इसकी ओर उत्साहित करना। यह काम प्रथम सप्ताह में।

"दूसरे सप्ताहमें अपने स्त्री रूपकी स्वयं ही दलाली करना। और रुपये-वालोंको फंसाकर मूर्ख पति द्वारा उनकी जेबोंके बोझको एक दम हल्का करके उनकी बिगड़ी आदत सुधार देना।"

"तीसरे सप्ताहमें अखबारों द्वारा इस जोड़ेकी और भी अधिक धाक

जमाकर करोड़पतियों, फ़िल्म कम्पनियोंके मालिकों और राजाओंपर अपना प्रभाव डालना।"

"चौथे सप्ताहमें फ़िल्ममें छोटा-मोटा काम करके खूब लम्बे-लम्बे ठेके लेना।"

"पांचवें और छठें सप्ताहमें लागडाँटकी आग भड़काकर हर जगहसे गहरी रक़म वसूल करना। और इस तरह एक लाख पूरा हो जानेपर चालिसवें दिन अपने स्त्री-रूपको सदाके लिये त्यागकर अपने मूर्खानन्दजीको अंगूठा दिखा देना।"

* * * *

भइ वाह! ग़ज़बकी चाल बताई। अपने तंगकी बस एक ही है। सचमुच लेखकने कमाल कर दिया है कमाल! मगर संसारमें ऐसा होना ज़रा मुश्किल है। क्योंकि दुनियामें भला कौन ऐसा उल्लू है जो स्त्री भेषधारी किसी पुरुषको अपनी स्त्री बना लेगा? लेख पढ़कर मैं यही टीका टिप्पणी कर रहा था कि इतनेमें देखा कि अभी एक सफ़ा और लिखा है। उसे भी जल्दीसे उलटकर पढ़ना शुरू कर दिया।

"पुनश्च—मूर्खाधिराज जी! जैसे मूर्खकी मुझे आवश्यकता थी सौभाग्य से वैसे ही मूर्ख मुझे आप मिले।"

अर्थ! अब यह बेवकूफ़ यकायक क्या बड़बड़ा उठा? ताज्जुबमें आकर अब एक सांसमें आगे पढ़ने लगा—

"क्योंकि शातिरहुसेन मैं ही हूँ जिसके पति बननेके लिये आप ज़रासे इशारेमें दनसे कूद पड़े। सिर्फ नाममें कुछ भेद है। यानी शातिरके बदले मेरा नाम कुछ और है। राजा साहबके दिलमें लागे-डाँटकी चिनगारी

सुलगानेके लिये लखनऊका नवाब भी मुझीको बनना पड़ा था। इसी लागडांट ही की खातिर टेलिफ़ोनपर बहुत-सी बातें बनावटी हुआ करती थीं। इसकी मददके लिये उसी जगह पर एक जापानी घंटी भी लगी हुई थी जिसका सरोकार मेरे पैरोंके पास फ़र्शके नीचे, जहां बैठकमें मेज़ है एक रबड़ की कुप्पीसे था और इस तरह वह मेरे इशारे पर बज उठती थी। मेरी गैरहाज़िरीमें मेरे बन्द कमरेसे जो गानेकी आवाज़ आया करती थी वह मेरी न थी बल्कि एक सफ़री 'रेडियो'की होती थी। आज ठीक साढ़े नौ बजे कम्पनीके डाइरेक्टर साहबने आनेको कहा था। शायद कमिशनके लिये मुंह फैलाएं। उनसे कह दीजियेगा कि अभी तो आधी रकम बाक़ी है जब वह मिलेगी तब उनकी सेवा की जायेगी और बता दीजियेगा कि आज मैडम बीमार हैं। बिस्तरेसे उठ नहीं सकतीं।

"हम लोग पिछले महीनेकी चौबीस तारीखको इस 'फ़्लैट'में आकर रहने लगे थे। एक सप्ताहका किराया पहिली तारीखको दे दिया गया है और आज महीना खतम है। इसलिये कल आपको पूरे महीनेका किराया सवासौ रुपये देना है। मैंने तो चालीस दिनोंमें एक लाख रुपये इकट्ठा करनेकी आशा की थी। मगर ईश्वरने सैंतीस ही दिनोंमें मुझे उससे भी कहीं ज्यादा दे दिया। यह सब आपकी मूर्खताओंकी कृपा है। इसके लिये मैं खाली शब्दों ही से नहीं बल्कि पांच रुपये नक़द देकर आपको दिल से धन्यवाद देता हूँ ताकि इतनेमें जहाँ तक आप रेलपर जा सकें भाग जाएँ। बाकी रास्ता पैदल घसीटिये। क्योंकि मैडम इस संसारमें अब किसीको ढूंढ़े नहीं मिल सकतीं। उनकी स्थिति ही अलोप हो गई। पक्के आमोंके साझीदार होनेके नाते बस आमही। यह लिफाफ़ा मैं खुद अपने ही

हाथसे आपको दे आऊँगा। मगर वह शकल भी मेरी बनावटी होगी। और एक बात यह भी बताए देता हूँ कि रेलमें आपकी जेब मैंने ही काटी थी ताकि आपके उल्लू बननेमें फिर कोई कसर न रह जाये।"

अब आगे पढ़ना सख्त बेवकूफ़ी थी। मारे गुस्सेके उस पाजीके लेखको टुकड़े-टुकड़े करके उसका द्वार पीटने दौड़ा। दरवाज़ा भड़से खुल गया। मगर वह बदमाश मए नोटोंके एकदम गायब! न बक्समें, न बिस्तरेपर, न तकियेके नीचे कहीं पर भी कम्बख्तने एक पाँच रुपयेका भी नोट नहीं छोड़ा था। सामान कुछ कम ज़रूर थे मगर कौन-कौन सी चीज़ न थी इस परेशानीमें कुछ बता नहीं सकता।

पाखाना, गुसलखाना और चूल्हाखंडके द्वार इस तरफ़से बन्द थे। मगर गैलरी और छज्जेकी तरफ़वाले दरवाजे भीतरसे नहीं सिर्फ़ बाहरसे बन्द मिले। बस मालूम हो गया कि वह शैतान इन्हीं दोनोंमें किसी तरफ़से बाहर निकल गया। उस पर कमीनापनकी हद तो देखिये कि मेरे कमरेका भी छज्जेकी तरफ़का दरवाज़ा बाहरसे बन्द करता गया। अगर कहीं गैलरीसे निकलनेका दरवाज़ा बन्द होता तब तो यहीं मेरा जेलखाना बन जाता। बाहर किसी तरफ़से भी नहीं निकल सकता था।

जेलखानेका नाम दिमाग़में आते ही सारा गुस्सा छू मन्तर होगया और यकायक दिलमें घबराहट समा गई।

जल्दीसे मैंने पतलूनके नीचे अपनी पुरानी धोती और कमीज़के नीचे अपना पुराना कुर्ता पहन लिया एक टाँगमें मोजेके ऊपर पट्टीकी तरह अपना पुराना अंगौछा लपेटा और जेबमें रूमालकी जगह अपनी पहलेकी गाँधी टोपी रख ली। ईश्वरकी कृपासे अपनी इन चीज़ोंको मैंने साहबी ठाटमें

पढ़कर अबतक फेंक नहीं दिया था। भागनेकी पूरी तय्यारी कर अन्तमें नित्य दाढ़ी बनानेवाला उस्तरा जेबमें रखा ही था कि राजा साहबके मैनेजर फट पड़े। मेरा दम सूख गया।

उन्होंने आतेही पूछा—"मैडम कहाँ हैं?"

मैंने लड़खड़ाती हुई ज़बानसे कहा—"न-न-नहीं हैं। फ़िल्म कम्पनी गई हैं। न-न-नोटिस देने।"

"तो कृपाकर आपही जल्दीसे बता दीजिए कि सेक्रेटरीने नब्बे हज़ारमें कितना मैडमको दिया और कितना कमिशन लिया।"

सारे बदनमें आग लग गई। कहाँ राम-राम कहाँ टें-टें। झुंझलाकर जवाब दिया—"मुझे साहब इतना लम्बा हिसाब ज़बानी याद नहीं रहता।"

"अच्छा तो मुझपर इतनी मेहरबानी कीजिए कि मुझे यहीं कहीं छिपा दीजिए। क्योंकि वह बेईमान आप लोगोंको इस मामलेमें होशियार करने आता ही होगा। मैं उसकी बातें छिपकर सुनना चाहता हूं।"

मैंने बड़ी खुशीसे ग़ुसलखाना खोल दिया। उसके भीतरसे सिटकिनी चढ़ाई और झट अपने कमरेके बाहर निकल आया वैसेही धरोंकी। सेक्रेटरी साहब सीढ़ीमें आते हुए दिखाई पड़े। फिर जान सांसतमें पड़ गई।

लपककर वहीं वह मेरे कानमें कहने लगे—"मैं कल यह कहना भूल गया था कि अगर मैनेजर साहब कमीशनके बारेमें कुछ पूछें तो आप लोग कह दीजिएगा कि सिर्फ एक हज़ार कमिशन दिया गया। क्योंकि नवाब अस्सी हज़ार दे ही रहे थे। उससे हमारे यहाँ सिर्फ दस ही हज़ार अधिक पर तो मामला तय हुआ। बस उसी दस हज़ारपर कमीशन होना चाहिए

जो दस फ़ीसदीके हिसाबसे एक हज़ार हुआ। यही उन्हें समझा दीजिएगा। इसीलिए मैं दौड़ा हुआ आया हूँ। मैं इस मिहरबानीको कभी भूलूंगा नहीं।

मैं सोचने लगा कि इस मरदूदको अपने रास्तेसे कैसे हटाऊँ। मुझे चुप देखकर उनकी खुशामद और बढ़ गई। तब मैंने कुछ सोचकर जवाब दिया—"अच्छा आप हम लोगोंका एक काम कर दें तो हम लोग भी किसी तरह आपकी खातिर यह सफेद झूठ कह देंगे।"

उसने खुश होकर कहा—"जो कहिये आपकी सेवा करूँ। मगर इस वक्त मेरी आबरू बचा लीजिए। इस उपकारके बदलेमें देखिएगा राज्यमें पहुँचकर मैं आप लोगोंका कितना फ़ायदा कराता हूँ।"

उसे अपने कमरेमें ले जाकर दरवाज़ा भेड़ लिया और गुसलखानेसे दूर हटकर चुपके-चुपके उसके कानमें मैंने कहना शुरू किया—"बात यह है कि नवाब साहबका प्रस्ताव न स्वीकार करनेके कारण उन्होंने हम लोगोंके पीछे दो बदमाश लगा दिए हैं जो इस मकानकी गैलरियोंमें इस ताकमें घुस रहे हैं कि जैसे ही हम लोग रुपए लेकर फ़िल्म कम्पनीको देने और बैंकमें जमा करने जाएं वैसे ही हमारा पीछा करके रास्तेमें लूट लें। खैर मैडम तो रुपयोंके साथ उनकी आँख बचाकर अभी-अभी किसी तरह निकल गई हैं और मुझे उन्हें धोखेमें डालनेके लिये यहीं छोड़ गई हैं मगर मैं डर रहा हूँ कि कहीं वह लोग ताड़ न जायँ कि मैडम यहाँ नहीं हैं। इसलिये अगर आप मैडम की एक साड़ी पहन लें और उनके वापस आने तक उनके बिस्तरेपर मुँह छिपाकर चुपचाप पड़े रहें तो मैं उन बदमाशोंको अच्छी तरह धोखेमें डालकर यहीं अटकाये रख सकता हूँ। वर्ना बड़ा गज़ब हो जायगा।"

सेक्रेटरी साहबको तो कमीशनकी गहरी रकम ख़ुद हज़म करनेकी पड़ी थी। बातकी बातमें कोट पतलून उतारकर पर फेंका और झट मैंउम बनकर उनके कमरेमें लेट गए।

उनका कोट पतलून छिपानेके बहाने अपने कमरेमें लाकर टटोला तो राम राम! सारी मिहनत बरबाद गई। सिर्फ आठ रुपये साढ़े तेरह आने पैसे निकले। न हुआ कोई बम्बईका सेठ नहीं तो इस वक़्तमें इस अक़्लमन्दीका पुरस्कार चार पाँच सौ रुपयेसे कम न मिलता। मैंने झुंझलाकर उन कपड़ोंको पाख़ानेमें फेंक दिया। वैसे ही गैलरीकी तरफ़का द्वार किसीने खटखटाया।

आफ़त पर आफ़त। नाकमें दम होगया। अब लीजिये डाइरेक्टर साहब टपक पड़े। इनको भी इसी वक़्त कमीशनकी फ़िक्र करनी थी?

उन्होंने हाथ मिलाते ही पूछा—"क्यों ख़ैरियत तो है? आप इतने परेशान क्यों हैं?

"मैडम बीमार हैं। कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ।"

"हुआ क्या है? किसी डाक्टरको दिखलाया?"

"अभी नहीं।"

"क्यों? अरे! इसमें सोचनेकी कौन सी बात है? जाइये किसी अच्छे डाक्टरको बुला लाइये। मेरी मोटर ले लीजिये। ठहरिए मेरा कार्ड लेते जाइए। वर्ना शोफ़र मुझसे पूछने आयेगा।"

"तब फिर आप यहीं रहिये। वर्ना मैडम अकेली पड़ जायँगी। इसीलिये मैं अब तक कहीं गया नहीं।"

"हाँ हाँ, मैं यहीं इत्मीनानसे बैठकर अख़बार पढ़ूँगा।"

"और यहाँ किसीको न आने दीजियेगा वर्ना बातचीतसे मैडमकी तबीयत और खराब हो जायगी।"

"ठीक कहा! आप दरवाज़ा भेड़ते जाइए।"

दरवाज़ा भेड़नेके साथ उसकी बाहरकी सिटकनी भी लगा दी।

शोफ़रने पूछा—"कहाँ चलूं"। मैंने कहा "स्टेशन"।

अपना हैट मोटर ही पर छोड़कर, ताकि शोफ़र समझे कि यह अभी लौट चलेंगे मैं स्टेशनके वेटिंग रूममें गया। गुसलखानेमें घुसकर चट अपनी मूछें साफ़ कर डाली और पेशाबखानेमें घुसकर अपने कोट पतलूनकी पोटली अपने अंगोछेमें बाँधी। इस तरह मिस्टर बुलबुलका क्रिया-कर्म करके खासा भइया अक्किल बहादुर बना दूसरी तरफ़से निकल गया और टिकट लेकर एक छूटती हुई गाड़ीमें दनसे जा बैठा।

यह मुझे पता नहीं है कि डाइरेक्टर साहबकी मोटर मेरे इन्तज़ारमें कब तक स्टेशन पर खड़ी रही और कमीशन लेनेवालोंने दर्बेके भीतर बन्द रहकर किस तरह अपने २ कमीशनका हिसाब किया और उसमेंसे कब निकले? क्योंकि फिर कभी मैंने बम्बईका नाम नहीं लिया। ईश्वर बचाए ऐसी अन्धेर नगरीसे जहाँसे मूछें मुंड़ाकर भागना पड़ा।

[illegible]

हरद्वारमें

(१)

"वाह ! वाह ! धन्य हैं मिस्टर ढकोसलानन्द !"

"क्यों नहीं दुनियामें उनके ऐसा अक्लमन्द होना मुश्किल है। मगर क्या करें बेचारे अपनी क़िस्मतसे मजबूर हैं जो कम्बख्त उनकी राहमें एक न एक रोड़े अटका देती है।"

आग लग गई। बदन जल-भुनके खाक होगया। मैं तो बम्बईसे अगाड़ी पिछाड़ी तोड़ाकर योहीं परेशान चला आ रहा था। क्योंकि टिकट की हद रास्ते ही में खतम हो चुकी थी। उसके बाद दूसरा टिकट खरीदने के लिये झांझी कौड़ी भी न थी। न जाने किन-किन मुसीबतोंसे लुकता-छिपता मुग़लको झांसी तक पहुंचा और गाड़ी चढ़ली। टिकट-कलक्टरोंकी ताक-झांक करके अभी इतमीनानसे बैठा भी नहीं था कि देखा एक

मेरे ही ऐसे खद्दरधारी मुछमुंडे महापुरुष कोनेमें शानसे बैठे एक किताब पढ़कर सुना रहे हैं और दब्बेके सभी मुसाफ़िर उनको गिद्धकी तरह घेरे हुए बड़े चावसे सुन रहे हैं और हर सांसमें ढकोसलानन्दकी अक़्लका राग अलाप रहे हैं। यह भला भय्या अक़्ल बहादुरको कब बरदाश्त हो सकता था? कहां राजा भोज और कहां भुजवा तेली? बड़े-बड़े अक़्ल-वालोंके तो मेरी अक़्ल बहादुरीसे होश गुम होते हैं और यह ढकोसलानन्द किस खेतकी मूली है जो मेरा सामना करने चला है? आ गया ताव। सरकर वहीं पहुंचा और गर्दन टेढ़ी करके पूछा।

"क्यों महाशयजी आपही ढकोसलानन्द हैं?" महाशयजी तो मुझे घूरने लगे। तपतक सुननेवालोंमें एक बोल उठा—

"जी नहीं। बल्कि इस पुस्तकका नाम 'ढकोसलानन्द' है। इसमें उन्हीं की फड़कती हुई कहानियां हैं।"—

फिर तो आस-पास वाले सभी हां में हां मिलाने लगे।

"अजी एकसे एक लाजवाब। तारीफ़ नहीं हो सकती। आइए ज़रा और पास आकर आप भी सुनिये। हां महात्माजी एक कहानी सुनानेकी और कृपा करें अभी स्टेशन दूर है।"

महात्माजीने बिना कुछ बोले चाले ग्रामोफ़ोनकी तरह पुस्तककी एक कहानी शुरू कर दी।

ढकोसलानन्द वैज्ञानिककी कहानी

(२)

"आखिर आपने इसे नौकर रख ही लिया !"

"किसे ?"

"उसी छोकड़ेको, जो अभी पानी लेकर आया था ।"

"क्यों ? न रखनेकी वजह क्या थी ?"

"इसे न यहां कोई जानता है, और न यही पता चलता है कि यह कहांका रहनेवाला है । तभी तो इसे नौकर रखनेकी मेरी हिम्मत नहीं पड़ी ।"

"अजी वाह ! तुम्हे इसके कामसे मतलब या इसके जाननेवालोंसे ?"

"फिर भी भई दुनिया दुनिया ही है । बिना अच्छी तरह इतमीनान किए किसी बातमें क़दम बढ़ाना अच्छा नहीं होता ।"

"यह आप-ऐसोंके लिये है, जो दुनियांको दुनियां समझते हैं।···क्यों? क्या है छोकड़ा? पान? अच्छा, रख दे मेज़पर।···अब क्यों खड़ा है? जा, अपना काम कर।"

छोकड़ेके चले जानेपर एक तीसरे साहब, जो अबतक चुप बैठे थे, बोल उठे—"क्यों बाबू ढकोसलानन्द, यह दुनियां दुनियां नहीं है, तब आपकी नज़रमें यह है क्या बला?"

"ताऊ की बछिया। जिधर चाहूँ, उधर हाँक दूँ। मजाल है, चूँ करे। बस, अपनेमें बूता होना चाहिए। फिर दुनियां उसके आगे किस खेतकी मूली है?"

"हाँ ऊँट जबतक पहाड़के नीचे नहीं आता, तबतक वह अपनी ऊँचाईका भी ऐसा ही खयाल करता है।"

"अजी डींग मारनेवाले कोई और होंगे, यहां तो सिवा सचके झूठ बोलना हराम समझता हूँ। न विश्वास हो, तो किसीसे मुक़ाबला कराकर देख लीजिए। देखिए, उसे कैसा उँगलियों पर नचाता हूँ।"

"ईश्वर न करे, किसीसे पाला पड़ जाय।"

"तो क्या होगा? क़सम खाकर कहता हूँ कि वह अपना मुँह लेकर न रह जाय, तो मेरा ढकोसलानंद नाम नहीं। इन्सान क्या, यहाँ शैतान तक को नीचा दिखानेका दावा रखते हैं।"

"क्यों नहीं।" पहले व्यक्तिने सिर हिलाकर कहा—"फिर भी मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि इस छोकड़ेका रंग-ढंग अच्छा नहीं मालूम होता। देखिए, वह यहाँ आकर हम लोगोंकी बातचीत सुननेके लिये किस तरह अटकना चाहता था।"

"तो क्या समझते हैं कि यह मेरी आँखोंमें धूल झोंक राकता है? आप किस खयालमें हैं बाबू गुलाबराय? मालूम होता है, अभी आप लोग मुझे अच्छी तरह जान नहीं सके हैं। भला, दुनियांमें ऐसा भी कोई पैदा हुआ है, जो मुझपर हाथ साफ़ कर सके। ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र तो घरकी खेती है! मैं चोरी-बदमाशी तकके लिये कहता हूँ जनाब। इनमें भी अगर कोई मुझसे पार पा जाय, तो रामझ लीजिए, उस दिनसे आप लोगोंको मैं मुँह दिखाना छोड़ दूँ। जब खोपड़ीमें बुद्धि है, तो मैं चोर-बदमाशकी क्यों परवा करने लगा? वह सेर-भर, तो मैं सवा सेर। अजी एक दफे तो एक ऐसे बेढब चोरसे पाला पड़ा था कि उसने सहारनपुरके स्टेशनपर मुझे अस्सी रुपएमें खरीद भी लिया था। मगर होता क्या? मेरे आगे उसे अपना-सा मुँह लेकर रह जाना पड़ा।"

इस अनोखी खरीदारीकी बातपर दोनों सुननेवालोंके एकाएक कान खड़े हो गए, और दोनों एक ज़बानसे बोल उठे—"भई यह खरीदारी कैसी?"

ढकोसलानंदने हँसकर जवाब दिया—"बस, इतनेही में आप लोगोंके होश उड़ गए? ठीक है, दुनियांकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। सभी नहीं उनकी थाह पा सकते।"

गुलाबरायने अविश्वासका भाव दिखलाते हुए पूछा—"कहिए भाई रामलाल, इस ज़मानेमें आपने भी कभी आदमीकी खरीदारीकी बातचीत सुनी थी।"

रामलालने सिर हिलाकर कहा—"जी नहीं, तभी तो मुझे भी ताज्जुब है।"

"अजी ताज्जुब पीछे कीजिएगा, पहले इसका ब्योरा तो सुन लीजिए।" यह कहकर उकोसलानन्द गर्व-पूर्वक अपनी चतुराईका हाल सुनाने लगे—"सुनिए साहब, हाल ही की बात है। इस दफे जब मैं पटने जा रहा था, तो रेलमें पटने जानेवाला एक मुशाफ़िर और मिला। एक साथी पाकर मेरी तबीयत बहुत खुश हुई। सहारनपुरके स्टेशनपर मेरे साथीका एक मुलाक़ाती पैदा हो गया। दोनोंमें न-जाने क्या बातचीत हुई कि मेरा साथी उससे झट अस्सी रुपए लेकर वहीं उतर पड़ा, और उसकी जगह पर वह मुलाक़ाती साहब पटनेका टिकट कटाकर मेरे साथ हो लिए। रास्ता बड़े मजेमें कटा, क्योंकि हज़रत थे बड़े मिलनसार और हद दर्जेके बातूनी। और मेरे आरामका भी उन्हें इतना खयाल था कि मेरे सोनेके लिये पूरी बेंच छोड़कर खुद कोनेमें दबके बैठे रहते थे। ज्यों-ज्यों मंज़िल नज़दीक आती थी, त्यों-त्यों उनकी बेचैनी बढ़ने लगी। आखिर पटनेके स्टेशनपर उनसे सब्र न हो सका। आप-ही-आप बड़बड़ा उठे—'उफ़्फ़ोह! मुझे बड़ा धोखा दिया गया। मेरे सब रुपए पानीमें गए।'

"मैंने उत्सुक होकर पूछा—'क्यों साहब धोखा कैसा?"

"जवाब देनेके बदले वह घबराया हुआ मुझीसे पूछने लगा—'आप मुझे इतना बता दें कि आपके पास तीन सौ रुपए हैं या नहीं। बड़ी कृपा होगी। ईश्वर की क़सम, सच बताइएगा।'

"मैं चकित होकर उसका मुँह देखने लगा। वह फिर उसी धुनमें बकने लगा—'आपके पास सिर्फ़ दो रुपए तेरह आने हैं। इससे ज़्यादा एक पैसा भी नहीं है। है न यही बात? ईश्वरके लिये मुँहसे हाँ कह दीजिए।'

"अब मैंने मुस्किराकर पूछा—'क्यों ?'

"उसने जवाब दिया—'बात यह है कि अगर आप मुझे सच-सच बता देंगे कि आपके पास तीन सौ रुपए नहीं हैं, तो उस आदमीसे, जिसको मैंने सहारनपुरमें अस्सी रुपए दिए हैं, कौड़ी-कौड़ी वसूल कर लूँगा। क्योंकि हमलोग आपसमें कभी बेईमानी नहीं करते। अररर! मैं यह क्या कह गया ?'

"खैर, अब तो आप उगल ही बैठे। ज़रा बताइए तो, मामला क्या है। खातिर जमा रखिए, यह बात मुझी तक रहेगी। किसी औरको मालूम न होगी।" मेरे इतना कहने पर उसे कुछ इतमीनान हुआ, और तब उसने साफ़-साफ़ कहा—'उस आदमीने मुझसे आपके बारेमें कहा था कि यह तीन सौ रुपएका माल है। अगर सौदा करना हो, तो कर लो। बस, उसकी चालमें आकर आपको मैंने अस्सी रुपएमें उससे खरीद लिया। मगर अफ़सोस! तीन बार आपके सामानको रत्ती-रत्ती छूँढ़ डाला। सब जेबें उलटकर भी देखीं, फिर भी दो रुपए तेरह आनेसे एक पैसा भी फ़ाज़िल न निकला।....."

"बस-बस, मैं समझ गया।" इतना कहकर मैंने अपना जूता खोला और मोजेके भीतरसे रबड़का एक लिफ़ाफ़ा निकला। फिर उसे खोलकर तीन सौ रुपएके नोट उसे दिखला दिए। हज़रतका मुँह लटक गया, और सर पर पाँव रखकर वहाँसे भागे। देखा जनाब बाबू गुलाबराय और बाबू रामलाल। इसी अक़्लकी बदौलत मैं दुनियाकी परवा नहीं करता, तब यह छोकड़ा मेरा भला क्या बिगाड़ सकता है ? रातको उसे मैं अपने कमरे ही में सुलाता हूँ, और घरका द्वार इस हिक़मतसे बंद करता हूँ कि मेरे सिवा दूसरा कोई उसे खोल ही नहीं सकता।"

बुद्धिमानीकी ऐसी अद्भुत करामात सुनकर भला किसका दिल नहीं फड़क उठता। मगर ठकोरालानंदके दोनों दोस्त तो बात-बातमें मानो नुक्ताचीनी ही करनेपर कमर कसे हुए थे। इसलिये तारीफ़ करनेके बदले थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। उसके बाद रामलालने कहा—"क्यों बाबू ठकोरालानंद, यह भी कुछ खबर है कि इस ज़मानेमें भूचाल कैसी आफ़त मचाए हुए है। कहीं बेमौके आ गया, तो दरवाज़ेका इस तरह बंद करना, जिसकी भीतरका कोई दूसरा खोल न सके, मालूम होगा।"

गुलाबरायने भी झट इसका समर्थन कर दिया—"बेशक, बात तो उस्ताद बड़े पतेकी कही। ईश्वर न करे, कहीं ऐसा हो। मेरा तो इसके नाम ही से कलेजा दहल उठता है।"

भूचालके नामपर ठकोरालानन्द एकबारगी बड़े ज़ोरोंसे हँसकर बोले—"अजी, यहाँ भूचालसे भी नहीं डरनेवाले हैं। मैंने एक ऐसा आविष्कार किया है कि गहरी नींदमें भी सोता रहूँ, तो भी मुझे भूचालका फ़ौरन पता चल जायगा। वैसे ही चारपाईपर से कूदकर चिल्लाता हुआ घरसे बाहर निकल भागूंगा। इस तरह मेरे पीछे सब घरवाले भी बाहर हो रहेंगे!"

"आविष्कार?"

"हाँ जनाब, आविष्कार। झूठ थोड़े ही कहता हूँ। ईश्वर चाहेगा तो थोड़े ही दिनोंमें आप लोग मुझे करोड़पति देखेंगे। तब आप लोगोंको पता चलेगा कि मैं क्या हूँ।"

"करोड़पति? यह कैसे?"

"इसी आविष्कारकी बदौलत। जब जीनतामकी गोली निकालकर

जापान लाखों रुपए कमा सकता है, तो भूचालसे जान बचानेकी युक्ति निकालकर क्या मैं करोड़पति भी नहीं हो सकता ?"

अब तो नुक्ताचीनी करनेवालोंका रंग बदला। उनके दिलोंपर अपनी धाक जमते देखकर ढकोसलानंद ज़रा और ऐंठके साथ कहने लगे—"जिस समय मैं अपने आविष्कारको पेटेंट करा लूँगा, उस वक्त देखिएगा, मेरा संसारमें कितना आदर होता है। क्या बताऊँ, मैंने इस तरफ़ अपना ध्यान देरमें लगाया, वर्ना क्वेटामें कभी ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता था।"

गुलाबरायने दबी ज़बानसे कहा—"मगर आपने कभी हम लोगोंसे अपने इस आविष्कारका ज़िक्र तक नहीं किया।"

"बिला पेटेंट कराए कोई भी वैज्ञानिक अपने आविष्कारका तज़किरा करता है, या मैं ही करता ? खैर, बात पड़ने पर कहना पड़ा ! मुमकिन है, अब भी आपको विश्वास न हो, तो आइए, दिखा भी दूँ।"

ढकोसलानन्द दोनों मित्रोंको अपने सोनेके कमरेमें ले गए, और अपने पलँगके ठीक ऊपर छतमें डोलकी तरह एलमोनियमके एक लटकते हुए कटोरेको दिखाकर बोले—"देखिए, इस कटोरेमें पानी भरा हुआ है, और इसके बंधनमें ऐसी युक्ति की गई है कि छतके ज़रा-सा हिलते ही एक तागा अपनी जगहसे खिसककर नीचे छूट पड़ेगा। वैसे ही कटोरा टेढ़ा होकर अपना सब पानी अपने नीचे सोनेवाले पर छपाकसे गिरा देगा। इस तरह जहाँ आँख खुली, वहाँ वह कारण फ़ौरन समझ जायगा। फिर तो जान लेकर खुद ही भाग खड़ा होगा। उसके साथ घरवाले भी सब होशियार हो जायँगे।"

दोनों मित्र इस अनोखी सूझपर फड़क उठे, और उन्हें ढकोसलानन्द

की अक़िलकी दिल खोलकर तारीफ़ करनी ही पड़ी। बल्कि दोनोंने यहाँ तक कहा कि "ईश्वरके लिये हम लोगोंको भी इसे कटोरेके लटकानेकी तरकीब बता दीजिए, ताकि आपकी बदौलत हम लोग भी अपनी जान बचा सकें।"

ढकोसलानन्दने जवाब दिया—"इसके लिये क्षमा करें। क्योंकि यही बहुत है कि मैंने बिला पेटेंट कराए यह यंत्र आपको दिखा दिया। खैर, इतना इत्मीनान है कि आप लोग हमारे आविष्कारको अपनाकर उससे अनुचित लाभ उठा नहीं सकते। फिर भी यह ज़रूर कहूँगा कि अभी दूसरों से इसका भेद न बताइएगा।"

"न जाने कब आपका यंत्र पेटेंट होगा, मगर तबतक हम लोगोंकी जान कैसे बचे?"

ढकोसलानन्दने कुछ सोचकर जवाब दिया—"घबड़ाइए नहीं, इसका भी उपाय किए देता हूँ। आज ही अपने घरके पीछवाले मैदानमें एक बड़ा-सा लम्बा गड्ढा कर उसपर एक घंटा टँगवाए देता हूँ। इसके बाद डुग्गी पिटवा दूँगा कि रातमें जब कभी यह घंटा बजे, लोग समझ लें कि भूचाल आ गया, और सब अपने घरोंसे बाहर निकल पड़ें। क्योंकि ऐसी घड़ीमें मैं घरसे निकलकर शोर मचाता हुआ बड़ा घंटा बजाने लगूंगा। अगर आप लोग जान और माल दोनों बचाना चाहते हैं, तो मेरी तरह जहाँ तक हो सके, एक छोटे-से कैशबक्स में रुपए-पैसे और बड़े-बड़े जेवरोंके बदले अशर्फ़ियाँ ही रक्खा कीजिए। और, इस बक्सको सोते वक्त अपनी चारपाईके पास ऐसी जगह रक्खा करें, जहाँ उठते ही फ़ौरन हाथ पड़े।"

डुग्गी पिट जानेसे बाहर भरमें एक अजीब खलबली मच गई।

सैकड़ों मुँह और सैकड़ों बातें। तरह-तरहकी टीका-टिप्पणी करके लोगोंने मतलब यही निकाला कि आज रातको भूचाल आनेवाला है। जो इसपर विश्वास नहीं करते थे, उनके भी दिल धड़कने लगे, और मारे परेशानीके सो न सके। चैनसे अगर कोई सो रहा था, तो मिस्टर ढकोसलानन्द। आधी रातको उनकी नाक और भी ज़ोरों से खर्राटे भरने लगी। इसी वक्त उनके मुँहपर छपाकसे पानी गिरा, और वैसे ही उसके पासकी छोटी मेज़ मय लालटेनके खड़बड़ाकर लौट गई। एक ही छलाँगमें पलँगसे कूद पड़े। अँधेरेमें कैशबक्स लेकर भूचालकी दुहाई पुकारते हुए, घर खोलकर निकल भागे, और पिछवाड़े पहुँचकर बड़े ज़ोरोंसे घंटा बजाने लगे। लोग तो अपने धड़कते हुए दिलके साथ इसीके इंतज़ार ही में थे। दम-के-दममें भूचालका शोर मचाते हुए सभी अपने घरोंसे निकल पड़े। भागनेमें किसीकी कुर्सी गिरी, किसीकी मेज़ उलट गई। कोई खुद ही गिर पड़ा। यही बड़ी खैरियत हो गई कि किसीका मकान नहीं गिरा। फिर भी लोगोंके कथनानुसार भूचाल बड़े ज़ोरोंका था, और सुबह तक सड़कोंपर इसीकी चर्चा होती रही। कोई अपने मकानके भीतर जाने का साहस नहीं कर सका। ढकोसलानन्द भी अपना कैशबक्स बग़लमें दबाए हुए बाहर ही चक्कर लगाते रहे। सुबह होते-होते जब परेशानी कुछ शांत हुई, तो रामलाल और गुलाबराय दोनों घूमते-घामते ढकोसलानन्दको धन्यवाद देते आए। ढकोसलानन्दकी मारे गर्वके छाती फूल गई। इतने में गुलाबरायने पूछा—"क्यों, यही आपका कैशबक्स है?"

"हाँ।" कहकर ढकोसलानंदने बक्सको सामने करके दिखाया। वैसे ही उनके मुंहसे निकल पड़ा—"अरे! यह तो कह नहीं है। यह

कैसा बक्स है? शायद छोकड़ेका हो। मगर उस बेवकूफ़ने इसे यहाँ क्यों रख दिया?"

कई बार छोकड़ेको पुकारा। मगर जवाब न पाकर गुस्सेमें भरे ढकोसलानंद अपने मकानके भीतर गए। वहाँ भी वह न मिला, और न कैशबक्स ही घरमें कहीं दिखाई पड़ा। गिरी हुई मेज़को उठाया, तो देखा, उसके एक पैरमें डोर बँधी हुई है। घबराकर अपने यंत्रकी ओर देखा। कटोरा ज्यों-का-त्यों लटक रहा था। "हाय! तब यह पानी मुझ पर कहाँसे गिरा?" बड़बड़ाते हुए जल्दीसे अपने कपड़ों और बिस्तरेको देखा तो मालूम हुआ कि पानीकी छींटें उनपर साफ़ ज़ाहिर हैं, और उनमें कुछ चटहटाहट भी है। वैसे ही पलँगके नीचे गिलासपर नज़र पड़ी, जिसमें उन्होंने रातको दूध पिया था। काँपते हुए हाथोंसे उसे उठाया, तो देखा, रोज़की तरह उसमें दूधकी तलछट नहीं है, बल्कि पानीसे मानो खँगारा हुआ है। एकाएक भूचालका सारा रहस्य खुल गया। बस, कलेजा पकड़कर वहीं बैठ गए। थानेमें रिपोर्ट तक करनेका भी नाम नहीं लिया।"

(३)

कहानी समाप्त होते ही वाह! वाह! की ध्वनिसे कमरा गूँज उठा। और उसीके साथ हँसीका भी फ़ौवारा छूटा। और यहाँ मारे गुस्सेके दिल कसमसाकर रह गया। भला इसमें कौन-सी अक़्लमन्दीकी बात है जिसके लिये इतनी तारीफ़? जिस बेवकूफ़को कटोरे और गिलासके पानीमें ज़रा भी फ़र्क़ न मालूम हो वह कहीं अक़्लमन्द कहा जा सकता है? अगर उसकी

जगह मैं होता तो छोकड़ा दूधवाले गिलास क्या दूधवाले बाल्टीसे भी अगर मुझपर पानी फेंकता तो बन्दा टस से मस नहीं हो सकता था। तब पता मिलता कि ढकोसलानन्द क्या है और भय्या अक़्लिल बहादुर क्या हैं। उसी वक्त, मैंने इरादा कर लिया कि मैं भी अपनी अक़्लकी बानगीकी किताब छपवा डालूं ताकि दुनियां जाने तो कि हां संसार में कोई ऐसा अक़्लका अवतार पैदा होगया है कि जिसके सामने एक नहीं सैकड़ों ढकोसलानन्द ऐसे अक़्लके पुतले निरे बुद्धू हैं। और उसी जगह छपवाऊँ जहांसे वह किताब छपी है जिसमें छापने वालेको भी अपनी भूल मालूम हो जाये और फिर कभी ऐसे टुटपुंजियोंकी कहानियां छापनेका नाम न ले। इसी ख्यालसे उस किताबको अपने हाथमें लेकर ज़रा देखने भालनेका जी चाहा बल्कि असलियत तो यह है कि किसी तरकीबसे उस किताबको लेकर उसमें एक दम आग लगा देना चाहता था ताकि 'ढकोसलानन्द'का नाम ही मिट जाए। न रहेगा बाँस न बजेगी बांसुरी। मगर इसके लिये ज़रा अक़्लसे काम लेनेकी ज़रूरत थी। जेबमें पैसे थे नहीं कि फ़ौरन दाम देकर खरीद लेता। इसलिये पहिले लापरवाही दिखाना मुनासिब समझा। और पढ़नेवाले महाशयसे गुँह बनाकर कहा।—

"इसमें कोई गाना बाना हो तो उसे ज़रा राग से सुनाइए तब अलबत्ता आपकी किताब बिक सकती है। खाली कहानियां सुनानेसे थोड़े ही काम चल सकता है?"

ईश्वर जाने मेरी बातमें कौन सा जादू था कि उसे सुनते ही महाशय जीके हाथसे किताब छूट गई। और सुननेवाले सभी मुंह खोलकर मेरी सूरत देखने लगे।"

एक बोला—"अरे! इन्हें आप पुस्तक-विक्रेता कहते हैं? इनको आप नहीं जानते? देशके ऐसे बड़े महात्मा हैं कि दस बारह दफे तो जेल हो आए हैं। दिल्ली में—"

मैं बीच ही में चिल्ला उठा—"अरे! बाप रे बाप! तब तो इनसे दूर ही रहना चाहिये। खूब बता दिया आपने।"

इतना कहकर जल्दी अपना झोला समेटकर मैंने अपनी गोदमें कर लिया।

अब बताइए इसमें बिगड़नेकी क्या बात थी। कोई अपने मालकी हिफ़ाज़त न करे? मगर उन बेवकूफ़ोंको कौन समझाये? सभी खिटखिटा कर लगे चायं-चायं करने।" फिर एक-एक करके मुझे इस तरह समझाने लगे मानो किसी जंगलसे मैं पकड़ आया हूँ। मैंने भी दिलमें कहा कि अच्छा बके जाओ, एक शब्द भी समझूं तो मेरा नाम अक्किल बहादुर नहीं।

"मालूम होता है आप अखबार नहीं पढ़ते। देशभक्त माननीय श्रीमान सुधारचन्दका नाम कौन नहीं जानता?"

"और नहीं तो क्या। ऐसे महात्माओंके दर्शन बड़े भाग्यसे मिलते हैं। गान्धीजीने तीसरे दर्जेमें सफ़र करनेका रिवाज न निकाला होता तो यह भला यहां बैठ सकते थे? फ़ार्स्ट क्लासमें होते।"

"हमलोगों पर बड़ी कृपा की जो हमारे यहांकी स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करने श्रीमान पधारे थे। अन्यथा हमलोग भी इनके दर्शनोंसे वञ्चित रह जाते।"

"यह श्रीमानकी सच्ची देशभक्ति है जो देशसेवामें हर जगह किसी न किसी प्रकार अवश्य पहुंच जाते हैं। अब देखिये मज़दूर सभाके

सभापतित्वके लिये निमन्त्रित होकर हरद्वार जा रहे हैं। इन्हींको कुछ दूर पहुंचाने हमलोग आए हैं।"

"और इनके परोपकारकी तारीफ़ तो यह है कि अपने साथ कोई सेक्रेटरी भी नहीं रखते ताकि निमन्त्रित करनेवालोंपर खर्चेका अधिक भार न पड़े। और इनके त्याग और आत्म-बलिदानका बखान क्या करूँ। हज़ारों रुपयोंका कारबार छोड़कर देशसेवामें अपना जीवन अर्पण कर दिया। इसीके लिये इन्हें कई बार जेलका कष्ट उठाना पड़ा। फिर भी अपने प्रणसे नाम मात्र भी नहीं डिगे।"

यह लोग यों ही बकते रहे। परन्तु मेरी निगाह बराबर किताबही की तरफ़ लगी रही।

एक मेरा भाव ताड़ गया। चट सुधारचन्दके पाससे किताब उठाकर और उसका मुख पृष्ठ खोलकर उसे मेरे हाथमें देते हुए कहने लगा—"हां इसे भी देख लीजिये। इसे स्वयं लेखकने जो हमारी प्रदर्शनीमें आए हुए थे श्रीमानको भेंट किया है। यह देखिये। ऐसे माननीय देश-नेता यह हैं।"

वाह रे मैं। आखिर किताब मेरे हाथमें आ ही गई। मैं उसे उलट-पलट कर देखनेका ढोंग करता रहा ताकि जब मौक़ा मिले तब उसे जलाऊँ।

इतनेमें कई स्टेशनोंको पार करके एक बड़ स्टेशनपर गाड़ी रुकी। मुझे और श्रीमानजीको छोड़कर हमारे डब्बेके सभी मुसाफ़िर उनके चरण छू-छूकर उतर पड़े। क्योंकि डब्बा छोटा था और इन्हीं लोगोंने उसे छेंक रखा था। मगर वहांसे टलनेके पहिले श्रीमानजीके लिये पूरे एक बेंचपर बिस्तरा बिछा गए और फलोंसे भरी हुई एक टोकरी भी खरीदकर रख गए।

श्रीमानजी लम्बे-लम्बे लेट गए। और बराबर इसी इन्तज़ारमें ताकते रहे कि मैं उनसे बोलूं। मगर जब गाड़ी दूसरी बार रुकी और उस डब्बे में संयोगसे कोई मुसाफिर नहीं आया तो श्रीमानजीको झखमारकर मुझसे बोलना पड़ा। कसमसाकर उठे। और ज़रा अधिकारके स्वरमें पूछा—

"क्यों महाशय आप कहां जायेंगे?"

अब बताइए जिसके पास टिकट न हो वह इसका क्या जवाब दे। इसलिये मैंने भी ज़रा अकड़कर जवाब दिया—

"आजी महाशय आप से भी बहुत दूर।"

एक ही जवाबमें भय्या अक़िल बहादुरको हज़रत समझ गए। चुपचाप बेंचके नीचेसे भरा लोटा उठाया। और पाखानेमें चले गए। अब मुझे 'ढकोसलानन्द'का नामनिशान मिटा देनेका मौक़ा मिला। मगर वैसे ही श्रीमान पाखानेसे बड़बड़ाते हुए निकल पड़े—"राम राम बड़ा गन्दा है।"

मुझे तो अपने मौकेकी पड़ी थी। चट बोल उठा—"तो स्टेशन पर चले जाइए। यहां गाड़ी आध घन्टेसे भी ज़्यादा रुकती है।"

"सचमुच? क्या टाइमटेबिल आपके पास है?"

"टाइमटेबिलको मारिये गोली। मैं रोज़ आता जाता हूं। मेरे आगे टाइमटेबिल क्या चीज़ है।"

"तब तो यहां आप भी कर सकता हूं।"

मैंने कहा—"जी हां साबुनसे अच्छी तरह मल-मल कर।"

"अच्छा तो मेरा सामान देखियेगा।" यह कहकर उन्होंने अपना

फ़ौलपाया राजकी कहानी

(८)

मैं नेता हूँ। मेरी नेतागिरीकी वह धूम है कि कुछ न पूछिये। अपने पैरोंके बल चलना भी मुश्किल है। जिधर निकलता हूँ सवारी ही पर लदकर—जिसको खींचते हैं चौपाये नहीं बल्कि दो टाँगवाले प्राणी, वह भी झुण्डके झुण्ड। जयजयकारकी पुकारोंसे मेरे कानके पर्दे गायब हो गये हैं। इसलिए अपनीही आवाज़ सुनाई देती है दूसरोंकी नहीं। और मेरी आवाज़ भी कैसी है कि ज़मीन आसमान दोनों डगमगा उठते हैं। जिस वक्त, मेरे व्याख्यानोंकी आँधी चलती है सड़कोंपरके दवा बेचनेवाले अपनी लन्तरानी भूलकर मुंहके बल गिर पड़ते हैं। उस वक्त, मेरा चेहरा कैसे-कैसे पैंतरे बदलता है बस इसीसे समझ लीजिए कि उसकी

तेज़ीके आगे फ़िल्मकैमरे भी हार मानते हैं। क्योंकि उसके फ़ोटो लेनेकी कोशिशमें उनकी कमानी हमेशा टूट जाती है।

मेरी नेतागिरीका उद्देश्य क्या है यह समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि इसके लिए बुद्धिबलकी ज़रूरत है। जिसका तो गला भैंसे पहुँचते ही घोंट दिया। क्योंकि इसीकी रोकथामने पशुबलको मुर्दा करके देशको एकदम कायर बना दिया था। जहाँ इसका ब्रेक हटा फिर क्या कहना था मुल्कमें बहादुरी फट पड़ेगी। वीर-रसका चमत्कार ज़रा ज़रा-सी बातमें हर जगह दिखाई देने लगा। यहाँ तक कि सभी त्योहार, जलसे, मेले, तमाशे, लड़ाई दंगेके अखाड़े बन गये। स्वतंत्र संग्रामके लिये वहाँ जनता दिल खोलकर बहादुरीकी शिक्षा पाने लगी।

पेड़की भलाई उसकी जड़के सींचनेमें है। इसी नियमके अनुसार मेरे व्याख्यानोंका मूलमन्त्र यह है कि बस टाँगोंमें तेल लगाओ—शरीरका सब रोग दूर।

इसी मन्त्रको एक रियासतमें, जहाँ मैं किरायेपर बुलाया गया था, अपने लैक्चरमें इस तरह फूंक रहा था कि—"टाँगे ही शरीरकी जड़ हैं।" दुनियाका सारा काम इन्हींके चलने फिरने पर निर्भर है। अंग-अंग सब बराबर। फिर यह कैसा अंधेर है कि शरीरके और अंग टाँगोंकी कमाईपर मौज करें और ऊपरसे इनपर लदे भी रहें। जबतक यह बोझ इनपरसे हटाया नहीं जाता तबतक इनकी अवस्था भला कैसे सुधर सकती है? इसलिए हम नेताओंका कर्तव्य है कि समस्त शरीरके खूनसे इन्हें सींचे ताकि ऊपर अंग आपसे आप सूख जायें और ये तगड़ी होकर इस योग्य हो सकें कि उन्हें आसानीसे नीचे गिरा

दें।..." इतनेहीमें एक अधेड़ अपनी जगहपर खड़ा होकर बोल उठा —"मगर देखिये कहीं इस तरह फ़ीलपाया न हो जाय।"

लोग हँस पड़े। मेरे विचारोंका सिलसिला यकायक बिगड़ जानेसे मैं कुछ ऐसा बौखलाया कि वहाँसे एकदम रफूचक्कर हो गया।

कई साल बाद फिर मुझे उसी रियासतमें संयोगवश जाना पड़ा। मेरा कुली शहरके बाहर ही एक जंगलमें मेरा सामान रखकर कहने लगा—"बस यहाँसे वह रियासत शुरू होती है। उसके भीतर कोई बाहरी कुली नहीं जा सकता।"

वह चला गया। और मैं दूसरा आदमी तलाश करने लगा। कुछ ही दूरपर बहुतसे जानवर चर रहे थे और उनके चरवाहे एक पेड़के नीचे बैठे गप लड़ा रहे थे। मैंने उनसे मज़बूरीपर सामान ले चलनेको कहा। सबने जवाब दे दिया कि मुझे छुट्टी नहीं हैं। मैंने दूनी मजदूरी कर दी फिर भी कोई टससे मस नहीं हुआ। तब मैं खुशामदें करने लगा। वह भी बेअसर हुईं। इतनेमें एक साधु यह गुनगुनाता हुआ—"ढोल गंवार पशू अरु नारी। चारों ताड़नके अधिकारी।" मेरे सामने आकर मुस्कराने लगा। उसे देखते ही मेरे होश उड़ गए। क्योंकि यह वही अधेड़ था जिसने वहाँ मेरे व्याख्यानके बीचमें "फ़ीलपाया" की बोली मारकर गड़बड़ी डाली थी। मैं घबड़ाया कि कहीं वह मुझे पहचान न ले। उसने हँसकर कहा—"जैसे देवता वैसी पूजा भी हो तब वह राज़ी हों। इसीलिए कहा जाता है कि लातकी देवी बात से नहीं मानती।" यह कहकर वह चलता बना। और अब मैंने इतना इशारा पाकर चुटकी और गालीसे काम लिया। चुटकी बजाते ही सभी मेरा सामान ले जानेको तैयार हो गए।

अभी थोड़ी दूर गया था कि वह साधु मुझे फिर मिला और बोला—"कुशल इसीमें है कि इस शहरमें न जाओ।"

मैंने उत्सुक होकर पूछा—"क्यों?"

वह—"यहाँ अब 'फ़ीलपाशा' राज है। भलेमानुसोंका गुज़र नहीं है।" मैं अचरजसे उसका मुँह देखने लगा।

वह—"नहीं समझे। कुछ नेताओंकी इस शहरमें ऐसी कृपा हुई है। यहाँ सर और पैरमें कोई भेद नहीं रह गया। टाँगें सरका काम कर रही हैं और सर टाँगोंका। इसीलिए शहरसे भागकर मैंने इस जंगलकी शरण ली है और साधू होकर अपने दिन काट रहा हूँ।"

ओहो! यह तो मेरे ही प्रचारका फलस्वरूप जान पड़ा। अपनी लगाई हुई फुलवारीकी बहार लूटना भला कौन नहीं चाहता? साधूकी बात अब मैं क्यों मानने लगा? खुशी-खुशी आगे बढ़ा। उसने चिल्लाकर कहा—"अच्छा नहीं मानते तो जाओ। अगर कोई मुसीबत पड़े तो मुझे ज़रूर याद करना।"

शहर में दाखिल होते ही मैंने ताँगा करना चाहा। मगर जिस ताँगे के पास गया, देखा कि उसमें बजाय घोड़े के गदहा जुता हुआ है। मैंने अचरजमें पड़कर पूछा—"क्यों भाई यहाँ क्या अब घोड़े नहीं मिलते जो गदहे जोते हुए हो?"

एकने हँसकर जवाब दिया—"मालूम होता है आप परदेशी हैं, अजी जनाब वह दिन हवा हुए जब घोड़ों गदहोंमें फ़र्क़ समझा जाता था। यहाँ अब सब धान बाइस पसेरी है।"

मैं—"यह कैसे?"

वह—"अंग अंग सब बराबर"के क़ानूनसे। "यहाँ अब यही क़ानून रायज है।"

मैं—"तो फिर घोड़े किस काम आते हैं?"

वह—"हल जोतनेके।"

मैं—"अरे! बैल क्या हुए?"

वह—"उनपर सवारी की जाती है।"

अब और बातचीत करना बेकार समझकर मैं दाढ़ी खुजाता हुआ वहाँ से चुपचाप खिसका। हजामत बढ़ी हुई मालूम हुई। इसलिए कुलीसे कहा कि सबसे पहिले तू मुझे किसी नाईकी दूकानपर ले चल।

नाईने मुझे जमीनपर चित लिटा दिया। और अपने झोलेसे एक खुर्पा निकालकर उसे सिलपर तेज़ करने लगा।

मैंने घबराकर पूछा—"अरे! खुर्पा क्या होगा?"

नाई—"इसी से मूड़ूँगा। ज़रा इसे तेज़ कर लूँ।"

मैं—"अरे! क्या तुम्हारे पास उस्तुरा नहीं है?"

नाई—"दाढ़ी क्या उस्तुरेकी बपौती है जो उससे मूड़ी जाय? पहिले रही होगी। अब हमारे यहाँ नए क़ानूनमें किसी चीज़में कोई दुम पूँछ नहीं है? सब बराबर। लाइए अब आपके ज़रा हाथ पैर बाँध दूँ ताकि हजामत बनाते वक्त आप छटपटायें नहीं।"

मैं जल्दीसे उठकर वहाँसे बेतहाशा भागा और सड़कपर एक झाड़ू लगानेवालेसे टकरा गया। सँभलकर उसे देखा तो मेरे मुँहसे आपसे आप निकल गया—"कौन जज साहब बहादुर श्रीमान् शास्त्री मन्दन?"

यह मुझे चाहे न जानते हों। मगर जब मैं पहिले दफे आया था तब इनकी तारीफ़ भी सुनी थी और देखा भी था। क्योंकि यह यहाँके बहुत बड़े हाकिम थे।

वे थोड़ी देर चुप रहे फिर ठंडी साँस लेकर बोले—"हाँ शास्त्रीनन्दन तो जरूर हूँ। मगर न जज साहब हूँ और न श्रीमान् बल्कि इस अधम पेटकी खातिर एक झाड़ूवाला हूँ।"

मैं—"यह कैसे?"

वह—"आजकलका यही ज़माना है। सूरजको बूजनार और बैल को कूकुर। बस इसीका राग अलापता हुआ अपने झाड़ूके तालके साथ उन नेताओंका गुन गाता हूँ जो कुल्हाड़ीके पेंट बने शरीरकी समाजसे दिमागको एक बेकार अंगकी तरह काटकर अलग फेंक देना ही अपनी वाहवाही समझते हैं। तब खोपड़ी बेचारी क्या करे? आखिर उसके भी तो पेट है। और उसपर रागल शरीरकी देख देख..."

मैं बीच ही में बोल उठा—"तो फिर अब यहाँ जजी कौन करता है?"

वह—"जाकर खुद देख लीजिये। मुझसे क्या पूछते हैं?"

सचमुच कचहरीमें जाकर देखा तो सभी दिमागी आसनोंपर एकसे एक जबरक़ीलभाया विराजमान पाया। खोपड़ीका कहीं नामोनिशान न मिला।

जब जजीमें पहुँचा तो उस वक्त यह मुकदमा पेश था कि कल्लूने भल्लूकी स्त्रीको मारा जिसके कारण उस स्त्रीका छः महीनेका गर्भ नष्ट हो गया। जज साहब लँगोटा चढ़ाये मेजपर पल्थी मारे बैठे थे। मुकदमा सुन चुकनेपर कमरसे सुरकनी निकालकर सुरका। उसके बाद

इस तरह अपना फैसला सुनाया कि—"कल्लू पर जुर्म साबित है। इसलिए कल्लूको यह सज़ा दी जाती है कि वह भल्लूकी स्त्रीको अपने घर ले जाय। और जब उसके फिर इतना इतना बड़ा गर्भ हो जाय तब उसे भल्लू को वापस कर दे।"

भल्लू छाती पीटकर चिल्लाने लगा—"मैं बाज़ आया अपने मुक़दमे से..." इतनेमें जज साहबने डाँट बताई—"बस चुप रहो। फैसला हो चुका। अब कुछ नहीं हो सकता।...हाँ लाओ दूसरा मुक़दमा पेश करो। वही खूनवाला और चटपट फाँसीका मचान खड़ा करो।"

दूसरे मुक़दमेमें जज साहबने यह हुक्म सुनाया कि—"सुनो धरदाब! तुम्हारे मकानकी दीवालके गिरनेसे वह राही दबकर मर गया। यानी तुम्हारे मकानने उसका खून कर दिया। इसलिए तुमको फाँसीकी सज़ा दी जाती है।"

धरदाब—"दोहाई सरकार। इसमें मेरा क़सूर क्या। यह तो कारीगर की गलती है जिसने ऐसी दीवाल बनाई।"

जज—"ठीक कहा। अच्छा पकड़ लाओ कारीगरको उसको फाँसी दे दो।"

कारीगरने आते ही शोर मचाया—"अरे! सरकार यह तो मज़दूर का क़सूर है जिसने मुझे ठीक मसाला बनाकर नहीं दिया।"

जज—"बेशक यह उसीका क़सूर है। बस बस मज़दूरको लाकर फाँसी दो।"

मज़दूरने पहुँचते ही गिड़गिड़ाना शुरू किया—"अरे! हुजूर हमार कौन खता। जब हम गारा बनावत रहेन। वैसे घपच्चूके मेहराब

छमाछम करता निकली बस हम वहींके ताके लगन। मारामें पानी गरब भूल गयेन।

अब घपन्चूकी औरत पकड़ बुलाई गई और उसको फाँसीका हुक्म हो गया। वह तनककर बोली—"वाह अच्छे फांसी देनेवाले आए। मेरे मर्दने मेरे लिये ये जेवर बनवा दिये। मैं पहनती नहीं तो क्या करती।"

लीजिये अब जुर्म उसके सरसे हटकर घपन्चूके सरपर फट पड़ा। फाँसीका नाम सुनते ही उस बेचारेकी घिग्घी बँध गई। उसके मुँहसे कुछ भी बोल न फूटा। वह पकड़कर फाँसीके तख्तेपर लटकाया जाने लगा। इतनेमें जल्लादने हाँक लगाई—"अरे सरकार फाँसीका फन्दा बड़ा है और इनकी गर्दन बहुत पतली है। उसमें यह फन्दा ढीला पड़ता है।"

जज साहबने हुक्म दिया—"अच्छा तो किसी मोटी गर्दनवालेको लटका दे। यहाँ तो फाँसी देनेसे मतलब है। इनका मुक़दमा खाली थोड़े ही जा सकता है।"

सबकी गर्दन नापी जाने लगी। हाय! हाय! कम्बख़्तीसे मेरी गर्दन नापमें बिलकुल फिट उतर गई। और मैं फाँसीके लिए फ़ौरन चुन लिया गया। अब तो मेरी जान सूख गई। अपने कर्मोंपर आँसू बहाने लगा। कहाँसे इस आफ़तमें आकर फँसा। करघा छोड़ तमाशा आये नाहक मोट जुलाहा खाए। बहुत रोया बहुत गिड़गिड़ाया। हर तरह समझाने की कोशिश की। यहाँतक कह डाला कि—"अरे मैं ही वह नेता हूँ जिसने तुम्हें धूलसे उठाकर इस दर्जेपर पहुँचाया। मेरेही बदौलत तुम्हें आज यह दिन देखना नसीब हुआ। मैं ही वह कुल्हाड़ीका बेंट हूँ

जिसने समाजके दिमागको खोदकर फेंक दिया। उसके रोज़ी धंधेमें आग लगाकर उसे ऐसा कुचल दिया ताकि आसानीसे तुम उठ सको। देखो तुम्हारे लिए क्या नहीं किया कुछ तो मेरा ख्याल करो।"

इतनेमें कोई बोल उठा—"इनके लिये या अपनी नेतागिरीके लिए।"

भाड़में जाय मेरी नेतागिरी। अब दीन दुनिया मुझे सब सुझाई देने लगा। किसी ने ठीक कहा है कि "अमचौरी कोउ देत है मतवारिन हथियार।" इसीका फल भोग रहा हूँ। अब जाना कि उस्तुरेका काम उस्तुरा ही कर सकता है और खुर्पेका खुर्पा। मगर करूँ क्या? जल्लाद भी कमबख्त मुझे फाँसी देनेमें जल्दी करने लगा। इतनेमें वह साधु उधर आता हुआ दिखाई पड़ा। वैसे ही उसकी बात मुझे याद आई। और मैं चिल्लाया—"ठहरो ठहरो, जल्दी न करो। मुझे अपने गुरुजीका आशीर्वाद ले लेने दो।"

साधूने चुपकेसे मेरे कानमें कहा—"जो मैं करूँ वही तू कर।"

इतना कहकर वह साधू मुझे ढकेलकर खुद फाँसीपर चढ़ने लगा। मैंने उसे ढकेल दिया। मैं उसे फाँसीपर चढ़नेसे रोकने लगा और वह मुझे। आखिर जज साहब चिल्ला उठे—"अरे! यह कैसा गड़बड़झाला है?"

साधूने जवाब दिया—"बात यह है जज साहब कि हज़ार बरस बाद आज वह मुहूर्त आया है कि इस समय जिसकी फाँसी होगी वह एकदम बिला टिकट सीधे स्वर्ग चला जायेगा। यमराज रास्तेमें किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं कर सकते। ऐसी साइत फिर कभी आनेकी नहीं। इसी शुभ घड़ीके लिए मुद्दतोंसे मैं तपस्या करता आ रहा हूँ। आज राम-राम करके यह साइत नसीब भी हुई तो इसका लाभ उठानेके लिए मदद यह कूद

पड़ा। गुरु के होते हुए ऐसा उत्तम फल भोगनेका भला चेलेको क्या अधिकार है? आप ही फैसला कर दीजिये।"

जज साहब गम्भीर होकर बोले—"ऐसी बात?... अच्छा तो वैकुण्ठ जानेका किसीका नहीं, मेरा अधिकार है। बस बस इस वक्त मेरे सिवाय और कोई फांसी नहीं पा सकता। आप स्वर्ग जानेवाला मंत्र पढ़िये मैं फाँसीपर चढ़ता हूँ।"

साधूने उनकी तरफ़ दोनों हाथ उठाकर संस्कृतमें यह पद कहा—"यस्मिन् कुलेत्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते।" वैसे ही जज साहब लटक गए और यह दृश्य देखते ही मैं इतने जोरसे चौंका कि झट मेरी आँख खुल गई। और नेतागिरीका सारा बुखार उतर गया।"

* * * *

मेरा भाषण समाप्त होते ही धड़से एक जूता मेरी मेज़पर गिरा। और उसीके साथ यह आवाज़ गूंज उठी कि "मारो बदमाशको यह तो हमारे मालिक सेठजीकी हंसी उड़ा रहा है।" सभामें खलबली मच गई। अब ख्याल आया कि सेठ विश्रामदासके—जिनके रुपयोंके बल पर यह सभा की गई थी—बड़ा जबरदस्त फ़ीलपाया था। दूसरे उस कहानी लिखनेवाले को। किया धरा चौपट हुआ। अब तो प्राण लेकर वहाँसे नहीं बल्कि एकदम हरद्वारसे भागने ही में कुशलता थी। सर पर पाँव रखकर भागा और मेरे पीछे सारी सभा "कहाँ भागा सुधारचन्द" का शोर मचाती हुई दौड़ी। मगर भय्या अक्किल बहादुरको कौन गहै पा सकता है? अन्धेरेमें साफ़ निकल गया। रह गए सब अपना-अपना मुंह लेकर।

॥ हरद्वार की सैर समाप्त ॥

[illegible]